योगविद्या

वर्ष 14 अंक 12
दिसम्बर 2025

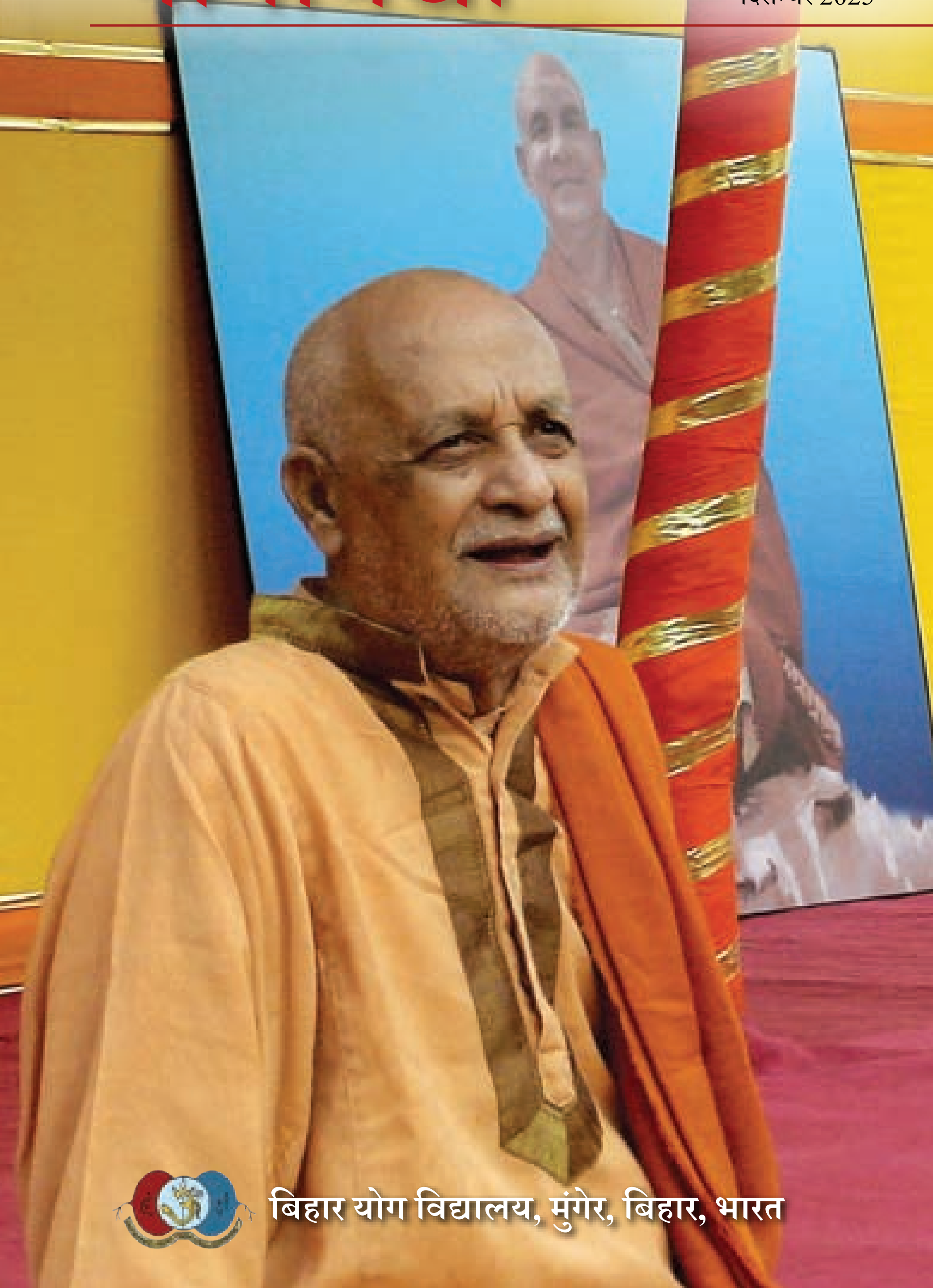

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

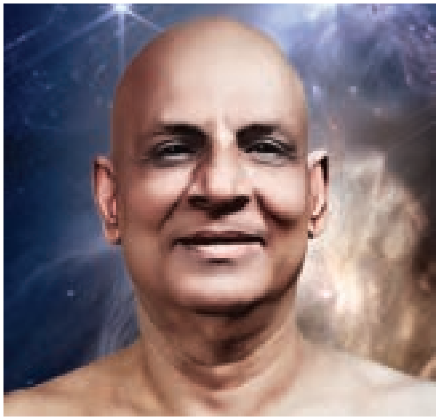

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

भक्ति

नदी के प्रवाह की भाँति प्रेम की धारा को भक्ति की संज्ञा दी जाती है। चुम्बक की ओर सुई के आकर्षण की भाँति भगवान की ओर जीव की जो तल्लीनता रहती है, उसे ही भक्ति कहते हैं।

भक्ति दो प्रकार की होती है, अपरा और परा। अपरा भक्ति निम्न स्तर की होती है। इसमें भक्ति का बीजारोपण होता है। इस स्तर पर भक्ति पूजा-पाठ तथा कर्मकाण्ड तक सीमित रहती है। भक्त के हृदय में उदारता नहीं, संकीर्णता रहती है। लेकिन परा भक्ति का क्षेत्र विशाल एवं असीम होता है। परा भक्ति का उपासक *वसुधैव कुटुम्बकम्* की भावना से प्रेरित होकर समस्त विश्व में वृन्दावन का ही दर्शन करता है और ईश्वर की लीला में आनन्द लेता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 12 दिसम्बर 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

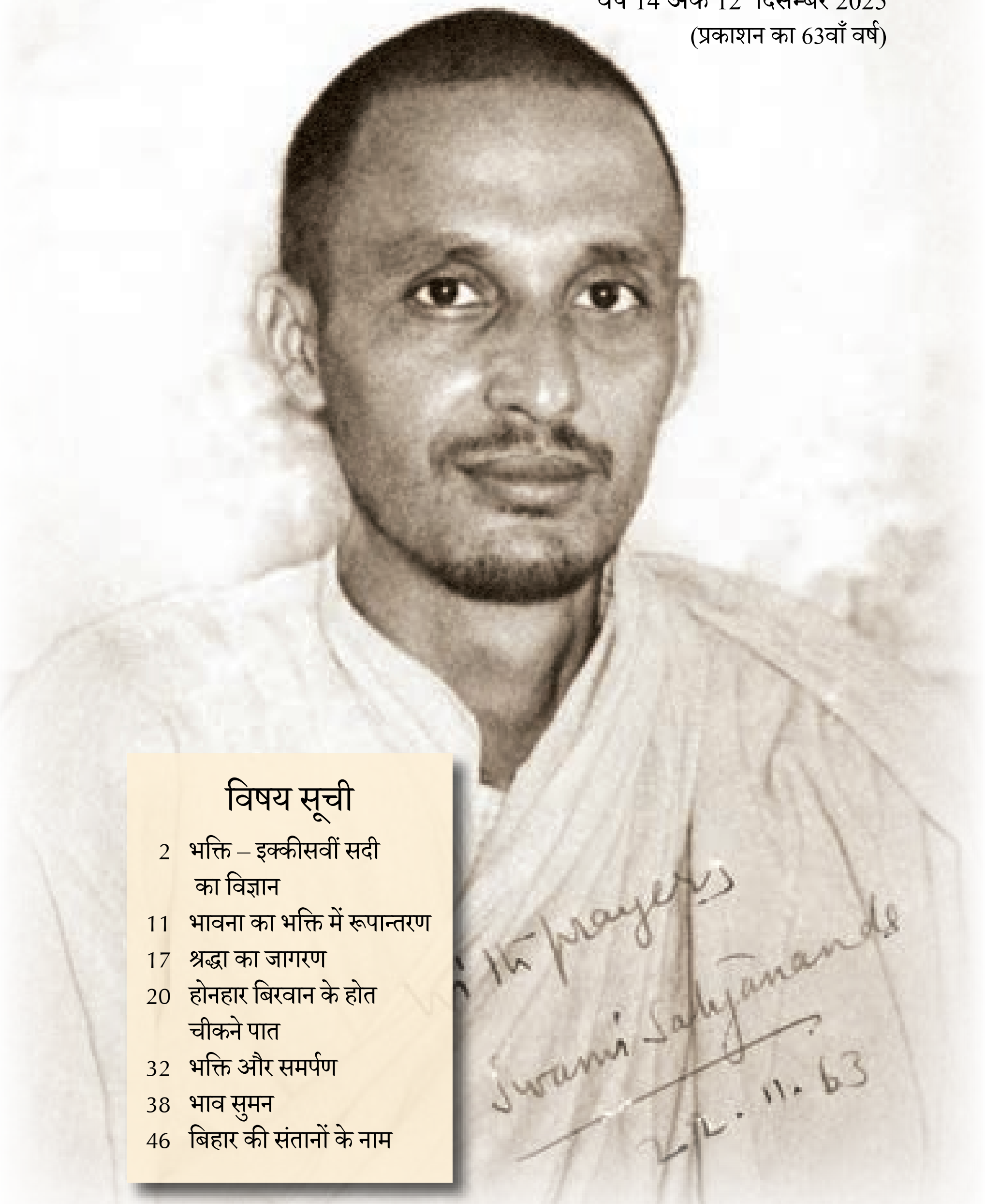

विषय सूची

2 भक्ति – इक्कीसवीं सदी का विज्ञान
11 भावना का भक्ति में रूपान्तरण
17 श्रद्धा का जागरण
20 होनहार बिरवान के होत चीकने पात
32 भक्ति और समर्पण
38 भाव सुमन
46 बिहार की संतानों के नाम

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

भक्ति – इक्कीसवीं सदी का विज्ञान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अचानक मुझे नयी शताब्दी की घटनाओं की झलक मिली है। इस शताब्दी में योग नेपथ्य में चला जायेगा, भक्ति की भूमिका प्रधान होगी। भक्ति यानी श्रद्धा, प्रेम, केवल विशुद्ध प्रेम। यह अवश्य घटित होगा, एक मान्यता के रूप में नहीं, बल्कि एक विज्ञान के रूप में। जैसे हमें शोध करने से आधुनिक औषधियों के बारे में पता चला है, जैसे मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क पर शोध किये और मस्तिष्क की तरंगों की जानकारी हासिल की, उसी प्रकार मीराबाई जैसे किसी भक्त पर प्रयोग और शोध करके जानने की कोशिश करेंगे कि उनके शरीर में क्या परिवर्तन होते हैं, उन परिवर्तनों को क्या नाम दिया जाये, उनके मस्तिष्क की तरंगें कैसी होती हैं। यह सब उन्हें ढूँढ़ना होगा। मीराबाई जहर का प्याला पी गई और उस पर कोई असर नहीं हुआ – क्यों और कैसे? ईसा मसीह को तीन दिनों तक सूली पर लटकाये रखा, उनके शरीर में कई स्थानों पर कीलें ठोंक दी गई थीं, फिर भी वे जीवित रहे। यह कैसे हुआ?

भक्ति-मार्ग इक्कीसवीं शताब्दी का विज्ञान है, यह मुझे स्पष्ट दिखता है। पिछली शताब्दी का विज्ञान प्रौद्योगिकी था। वैज्ञानिकों ने प्रौद्योगिकी, विद्युत् आदि के सिद्धान्तों पर शोध-कार्य किये हैं और उन्होंने हमें अनेक चमत्कारी वस्तुएँ दी हैं। इस शताब्दी में वैज्ञानिक अपनी दृष्टि भक्ति की ओर फेरेंगे और उसी प्रकार भक्ति पर अनुसन्धान करेंगे, जिस प्रकार पहले उन्होंने भौतिक पदार्थों पर किए थे। अब विज्ञान का कार्य-क्षेत्र होगा आस्था, विश्वास और भक्ति। मानव मन, व्यवहार, स्वभाव, समाज और सभ्यता पर भक्ति का क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर चिंतन-मनन और अनुसंधान होगा। इसके लिए वैज्ञानिकों को कठोर परिश्रम करना पड़ेगा। तब आप अध्यात्म-विज्ञान को मात्र धर्म या आस्था नहीं कहेंगे, बल्कि जीवन-विज्ञान कहेंगे। एक बार वैज्ञानिक इस पर चिन्तन करना शुरू कर दें, तो धर्म का पुनरुद्धार हो जायेगा।

इस शताब्दी में एक नयी क्रान्ति का पदार्पण होगा। वह क्रान्ति धर्म की, भक्ति की होगी। तुम्हारे बच्चे और नाती-पोते तुमसे पूछेंगे, 'पापा, भक्ति क्या होती है, आप जानते हैं? मेरे शिक्षक कह रहे थे कि अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने खोज की है और कहता है कि भक्ति बहुत आवश्यक चीज है, जो शारीरिक,

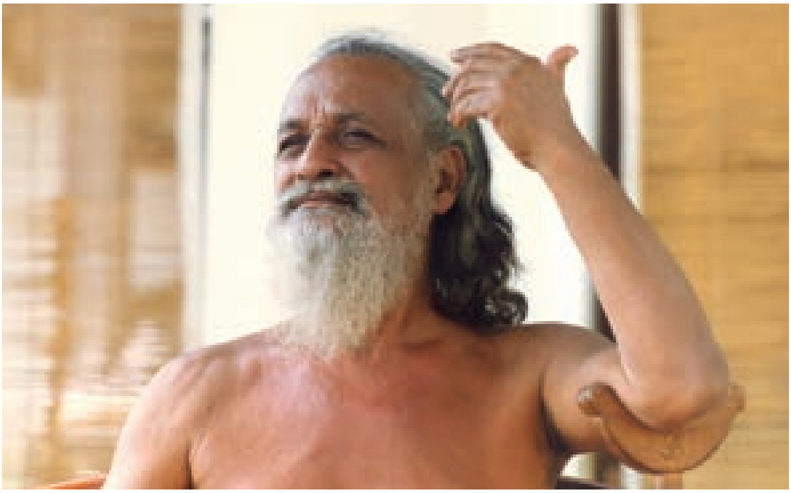

भौतिक पदार्थों को प्रभावित करती है और उसने यह भी कहा है कि उसने उपकरणों से तरंगों की जाँच की है और सब नाप-जोख करने के बाद आंकड़ों के आधार पर यह पाया है कि हमें प्रभु से उसी प्रकार प्रेम करना चाहिए, जिस प्रकार से हम अपनी पत्नी और बच्चों से प्रेम करते हैं। क्या आप भगवान से प्रेम करते हो?' तब फिर तुम कहोगे, 'इस बच्चे को क्या हो गया है, लगता है इसका भेजा फिर गया है।' तो वह बच्चा बोलेगा, 'मेरा भेजा नहीं फिरा है, मैं विज्ञान की बात बोलता हूँ।'

ईश्वर इस शताब्दी का विषय है। पिछली शताब्दी में वैज्ञानिकों के लिए विषय था 'पदार्थ'। पदार्थ पर अनुसन्धान करते-करते उन्होंने अनेक चीजें खोज निकाली हैं, जिनकी अब नकारात्मक प्रतिक्रिया हो रही है। इसलिए अब समाज में ईश्वर की चर्चा आवश्यक हो गयी है। चाहे यहूदी मार्ग से हो, ईसाई मार्ग से हो, इस्लाम के मार्ग से हो या हिन्दू मार्ग से हो, जिस रास्ते से भी हो – अब आध्यात्मिक बातों पर मन को लगाना होगा। पिछली शताब्दी में तो ईश्वर ऐसा विषय था, जिस पर लोग चर्चा नहीं कर सकते थे, लेकिन अब तुम चर्चा कर सकते हो। पर इसे व्यवस्थित रूप से, एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की तरह आना चाहिए।

मैंने अपने जीवन में कभी ईश्वर के विषय में चर्चा नहीं की है, परन्तु अब मैं इसके अतिरिक्त और किसी विषय पर बोल ही नहीं सकता। ईश्वर से अपना रिश्ता खोजो, इसे समझने की कोशिश करो और ईश्वर से प्रेम करने की कोशिश

करो। इसके लिये तुम्हें अपना काम-धाम नहीं छोड़ना है। नहीं। यदि तुम किसी लड़की से प्रेम करते हो तो क्या तुम अपना काम-धाम, खाना-पीना छोड़ देते हो? नहीं, यह तो सगजता का विषय है। बस एक-दूसरे की चेतना रहती है। लड़की लड़के के विषय में सोचती रहती है और लड़का लड़की के बारे में, चाहे वे कुछ भी करते रहें। उन्हें इसी में आनन्द आता है, इसी में वे मिलन का अनुभव करते हैं।

वैज्ञानिकों की भूमिका

भक्ति की शिक्षा तुम्हारी अगली पीढ़ी के लिए आवश्यक है, क्योंकि तुम्हारी अगली पीढ़ी इस प्रकार की नहीं होगी। वे धन-दौलत, रुपये-पैसों के पीछे भागने की बजाय पूछेंगे, 'भगवान की परिभाषा क्या है', जैसे श्वेताश्वतरोपनिषद् में पूछते हैं –

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता, जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु, वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥1.1॥

'इस सृष्टि का क्या कारण है? इन सभी प्राणियों की उत्पत्ति क्यों हुई? वे कैसे जीते हैं? उनका वास कहाँ है? किसके आदेश से वे रहते हैं? उनके दुःख-सुख को कौन नियन्त्रित करता है? किन नियमों का पालन करना है? ब्रह्म को कौन जानता है?'

वे ये सब प्रश्न पूछेंगे। यह पीढ़ी नहीं पूछ रही है। इस पीढ़ी को मात्र यह जानने में रुचि है कि 'चुनरी के पीछे क्या है।' इनके जीवन में केवल काम और अर्थ हैं, धर्म और मोक्ष नहीं। हम जो सिखाते हैं, हो सकता है वह आज जन-समुदाय के लिए प्रासंगिक न हो, मगर इसे बीस वर्षों के बाद याद करेंगे।

फिर भक्तियोग और धर्म का अभ्युत्थान होगा। राजनेता धर्म में कोई सकारात्मक और सृजनात्मक सहयोग नहीं दे सकते। केवल दो समुदायों के लोग धर्म को सकारात्मक सहयोग प्रदान कर सकते हैं। एक साधु-संन्यासी, दूसरा वैज्ञानिक, यानी ऋषि-मुनि। वे जो कुछ देख चुके होते हैं, उसके परे की चीज को देखने का प्रयास करते हैं। अणु, अणु से परमाणु, परमाणु से त्रिसरेणु। इस प्रकार आगे शोध करते हैं।

प्रारम्भिक भूमि तैयार करने का काम ऐसे कई लोगों को करना होगा, जो स्वयं अपने जीवन में इस दिव्यता का अनुभव कर चुके हैं। मेरे विचार से पहला

कदम वही होगा। पिछली शताब्दी में ऐसे बहुत लोग नहीं हुए हैं जो लोगों को दिव्य जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरणा दे सकें। बहुत-से धर्मोपदेशक हुए हैं और उन्होंने भगवद्-जीवन के विषय में बहुत उपदेश तथा प्रवचन भी दिये हैं, पर उनमें वह क्षमता नहीं थी। उपदेश देना पर्याप्त नहीं है। जब तक वह ज्ञान मेरे भीतर अनुभवात्मक रूप से प्रकट नहीं होता, तब तक दूसरों का मार्गदर्शन करना पर्याप्त फल नहीं देगा, उन्हें वास्तविक प्रेरणा नहीं दे पायेगा।

इस शताब्दी में जीवन की इस दिशा की ओर इंगित करने वाले वैज्ञानिक मानसिकता वाले लोग होंगे। यह काम वैज्ञानिकों का ही है, केवल उन्हीं को यह काम करना होगा। एक ओर भगवदनुभव-प्राप्त सन्त और दूसरी ओर वैज्ञानिक – दोनों को मिलकर यह काम करना होगा। पिछली शताब्दी की औद्योगिक क्रांति भी वैज्ञानिकों की देन थी और इस शताब्दी की भक्ति-क्रान्ति भी वैज्ञानिकों की ही देन होगी।

ऐसा समय जल्द ही आयेगा जब बिना भक्ति को दुबारा परिभाषित किये, बिना भक्ति को अपने जीवन का अंग बनाये मानव अपने कष्टों से मुक्त नहीं हो सकेगा। पीड़ा से मुक्त होने का यही एकमात्र आधार है, क्योंकि पीड़ा सिर्फ कमर के दर्द को तो नहीं कहते। मानव-मन में असंख्य पीड़ाएँ हैं। मानवीय चेतना में बहुत-सी अनसुलझी गुत्थियाँ हैं और हर समस्या के लिए अलग-अलग हल ढूँढ़ने जाओगे तो जिन्दगी बीत जायेगी सुलझाते-सुलझाते। सभी समस्याओं का एक साथ निदान भक्ति से हो सकता है। अतः यथासम्भव प्रयास करना चाहिए। कीर्तन करो, भजन करो, साधु-सन्तों का संग करो, महान् सन्तों की जीवनियाँ पढ़ो। उनकी प्रेरणाओं को जीवन में उतारो। भक्ति को कोई मत या सम्प्रदाय नहीं बना देना। कोशिश करो, इसमें समय लगता है। यह बुद्धि-विलास की वस्तु नहीं है। यह बहुत कठिन काम है। मन, बुद्धि, तर्क, वितर्क, कुतर्क, सब का बहुत कड़ा खोल है। इसलिए भक्त को तर्क-वितर्क में नहीं पड़ना चाहिये।

महर्षि अरविंद ने अपनी एक पुस्तक में स्वयं कहा है, 'तर्क एक सहारा था, अब तर्क एक अवरोध है।' इस तार्किक बुद्धि को पार कर जाओ तो इन सबके परे निकल जाओगे। नारद भक्ति-सूत्र में भक्ति की व्याख्या की गयी है – भक्ति प्रभु के प्रति अतिशय प्रेम है। वह अमृत स्वरूपा है। उसकी उपलब्धि से मनुष्य सिद्ध, पूर्ण, अमर और तृप्त हो जाता है। उसकी प्राप्ति से मनुष्य आकांक्षा-रहित हो जाता है, न शोक करता है, न घृणा करता है, न

किसी विषय-वस्तु में आनन्द लेता है, और न बहुत उत्साही होता है। उसको जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, शान्त हो जाता है, अपनी आत्मा में ही आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।

ईश्वर से सम्बन्ध

भक्ति का मतलब होता है भगवान से प्यार करना। कैसे प्यार करते हैं? जैसे अपनी मम्मी से करते हैं, जैसे अपने भैया से करते हैं और शादी के बाद जैसे अपने पति या पत्नी से करते हैं। वह ससुर वाला प्यार, साली वाला प्यार, समधी वाला प्यार नहीं। भक्ति में तीन मुख्य सम्बन्ध हैं, एक है वात्सल्यभाव, दूसरा है स्नेहभाव और तीसरा है माधुर्य-भाव, राधा-कृष्ण का। भक्ति का अर्थ होता है ईश्वर के साथ आपका अंतरंग सम्बन्ध। *'अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं, मूकास्वादवत्'* होना चाहिए, बस, इतना ही। जिस प्रकार माता, पिता या पत्नी से तुम्हारा सम्बन्ध होता है, वैसे ही ईश्वर से भी तुम्हारा एक सम्बन्ध है। ईश्वर से तुम्हारा जो भी सम्बन्ध है, वह भक्ति है और तुम्हें यह पता लगाना है कि वह सम्बन्ध किस प्रकार का है, वे तुम्हारे कौन लगते हैं।

मेरे लिए ईश्वर के बारे में कुछ कहने की अपेक्षा अनुभव करना ज्यादा आसान है, क्योंकि ईश्वर का वर्णन नहीं हो सकता। उनका तो केवल अनुभव किया जा सकता है। किन्तु कभी-कभी उनके बारे में सुनना अच्छा लगता है। इससे प्रेरणा, उत्साह, सहायता और शक्ति मिलती है, ताकि तुम अपने जीवन

के झंझावातों का मुकाबला बुलन्दी से कर सको। लेकिन ईश्वर के बारे में तुम जो कुछ सोचते या करते हो, वह तभी फलीभूत होता है, जब तुम उनके साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हो। तुम्हें स्वयं इस बात का पता लगाना होगा कि ईश्वर के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, क्योंकि यह पूर्णतः व्यक्तिगत सम्बन्ध है। ईश्वर से मेरा जो सम्बन्ध है, वह तुम्हारा सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह बिल्कुल व्यक्तिगत है, और तुम्हारा भी बिल्कुल व्यक्तिगत होना चाहिए।

इसलिए एक भक्त के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि ईश्वर उसके कौन हैं, वे एक-दूसरे से किस प्रकार सम्बन्धित हैं? ईश्वर से अपने सम्बन्ध का पता लगाने में समय लगता है। आवश्यक नहीं कि एक जीवन में ही आप पता लगा लें। एक बार इस सम्बन्ध का पता लग जाए तो समझो तुम्हारी यात्रा लगभग समाप्त हो गयी। अब तुम उनके बहुत निकट आ गए हो। श्रीमद्भागवत में आता है, 'जैसे भोजन के प्रत्येक ग्रास के साथ ही तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति – ये तीनों एक साथ हो जाते हैं, वैसे ही भगवान की शरण में आकर उनका भजन करने से तुरंत ही भगवान के प्रति प्रेम, उनके स्वरूप का अनुभव और वैराग्य, तीनों की एक साथ प्राप्ति हो जाती है।'

भगवान का आशीर्वाद प्रतिदिन गृहस्थ व्यक्ति को सबेरे बैठकर लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक निश्चित नियम का पालन करना चाहिए। कम-से-कम दो बार प्रतिदिन भगवान से सम्बन्ध जोड़ो, सुबह और शाम। सबेरे समय पर नहा-धोकर ठीक से बैठकर सम्पर्क जोड़ना चाहिए। कभी बीमार रहे, नहीं नहाये, तो कोई बात नहीं, यूँ ही बन्द कर दिया अपने को थोड़ी देर के लिए। उस समय अपने डॉक्टर, वकील, प्रधानमन्त्री, पति, पत्नी सब से पूर्णतः अलग हो जाना चाहिए। बिलकुल नंगा हो जाना चाहिए। भगवान के सामने नंगा होना पड़ता है, और उसके बाद दुनिया का काम करो। उनका भजन, उनकी शरणागति, उनकी लीला का श्रवण, उनके नाम का भजन, उनकी पूजा-अर्चना और उनके बारे में सतत् विचार। यही पहला कर्तव्य है।

सबसे पहले अपनी ऊर्जा का सही दिशांतरण करो। तुम्हारी जो ऊर्जा संसार की तरफ बही जा रही है, वहाँ से थोड़ा सम्बन्ध-विच्छेद करो। दिन में चौबीसों घण्टे तुम संसार का चिन्तन करते रहते हो। वहाँ से अपने मन को धीरे-धीरे भगवान की तरफ मोड़ो। आधे घण्टे से शुरू करके देखो, फिर तीन, चार, छः, आठ करते-करते चौबीसों घण्टे भगवान का चिन्तन करो। यही तो मैं करता हूँ। और तुम क्या करते हो? चौबीसों घण्टे सांसारिक विषयों का

चिन्तन, और हुआ तो डर के कारण थोड़ा बहुत भगवान को अगरबत्ती दिखा दी, गिरजाघर हो आये, या शुक्रवार को नमाज पढ़ ली, सोमवार को शिवलिंग पर जल चढ़ा दिया कि कहीं भगवान नाराज न हो जायें। तभी तो ईश्वर की कृपा नहीं उतरती है हम पर। चौबीसों घण्टे सांसारिकता के प्रति समर्पित और थोड़ा-सा ईश्वर पर, वह भी डर के मारे, उनके कोप से बचने के लिए। और उनको पूजते भी हो, तो वह भी अपने फायदे के लिए! अपने कल्याण के लिए भगवान का नाम लेना, यह कोई तरीका थोड़े ही है उपासना का।

भगवान को प्राथमिकता दो। सबसे पहले 'तू' और उसके बाद 'मैं'। उलटा नहीं। इसी प्राथमिकता के निर्धारण के अभाव के कारण मनुष्य दुःखी है। मानवता के दुःख का यही प्रमुख कारण है कि उसने अपनी प्राथमिकतायें गलत चुनी हैं। जरा सोचो तो, तुम अपने जीवन में प्राथमिकता किसको देते हो? अपनी कामना पूर्ति को, अपनी वासनाओं को, मोह को, चिन्ताओं को तुम आगे नहीं रखते हो क्या?

हम लोग वस्तुतः ईश्वर के ही सगे हैं, और किसी के नहीं। मेरा सबसे निकट का सम्बन्ध ईश्वर से ही है, माँ-बाप से नहीं, किसी अन्य व्यक्ति से नहीं। मैं किसी का पुत्र नहीं, किसी का पिता नहीं, किसी का भाई नहीं। मैं केवल प्रभु का दास हूँ। मैं भगवान का किंकर हूँ। बस, जीवन में यही एक सत्य है।

भक्ति-मार्ग सभी मार्गों से उत्तम है। विशेषकर उन लोगों के लिए जो भगवान का दर्शन करना चाहते हैं, सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं। परन्तु एक बात निश्चित है कि मेरे और भगवान के बीच कोई चीज है, जो एक बाधा के रूप में खड़ी है। चाहे आप इसे शरीर कहें, चाहे मन कहें या भावना कहें, कुछ तो है। मैंने सुन रखा है और मैं यह मानता हूँ कि भगवान मेरे प्राणों से भी अधिक समीप हैं। वे मेरी श्वास से भी अधिक निकट हैं। वे मेरे विचारों से भी अधिक नजदीक हैं। यदि ऐसा है, तो वे मुझे दिखायी क्यों नहीं देते? कहने का मतलब मैं सत्य को क्यों नहीं देख पाता, क्यों नहीं पहचान पाता?

इसका मतलब मेरी आँखों पर पट्टी बंधी हुई है, जो मुझे इस सत्य को देखने और पहचानने से रोक रही है। अब उपाय ढूँढ़ना होगा कि कैसे सम्बन्ध जोड़ा जाए। जब तक आप इस माइक्रोफोन को बिजली से नहीं जोड़ेंगे, तब तक यह कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार जब तक मैं किसी-न-किसी रूप में भगवान से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ूँगा, तो काम कैसे चलेगा?

अब यहाँ सीढ़ी-दर-सीढ़ी अर्पण करना होता है – शरीर का, मन का, भावनाओं का और अन्त में आत्मा का। आत्मा का अर्पण – इसके लिए मोक्ष की इच्छा, ईश्वर का सान्निध्य पाने की इच्छा, ईश्वर की कृपा पाने की इच्छा, ईश्वर से सम्बन्ध रखने की इच्छा को भी त्यागना होगा। मैं कुछ नहीं पाना चाहता, तुम्हें भी नहीं। तुम मेरे मालिक हो। मैं मानता हूँ। मैं खुश हूँ यह जानकर कि तुम मेरे मालिक हो। इसलिए मैं तुम्हारे बारे में दिनभर सोच सकता हूँ और मुझे तुम्हारा सान्निध्य भी मिलेगा। मगर आज, यदि तुम न भी आओ, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम अपने सेवक हनुमान को भेज दो, और कहलवा दो कि मुझे क्या करना है। मैं वही करूँगा। तुम्हें मुझसे कहने की आवश्यकता नहीं, तुम अपना संदेशवाहक भेज दो। यह आत्मा मेरी नहीं, तुम्हारी है। आत्मार्पण में आध्यात्मिक जीवन जीने की मेरी कामना का सवाल नहीं उठता, मोक्ष की कामना का सवाल नहीं उठता। नहीं, पूर्ण समर्पण!

भगवान ने मुझे सब दिया और जो मुझे नहीं मिला, शायद मुझे उसकी जरूरत नहीं है। फिर जबरदस्ती क्या माँगना? भगवान ने मुझे बीवी नहीं दी। भगवान ने कहा, 'बेटे, तुझे बीवी की जरूरत नहीं।' चलो, छुट्टी। अब भगवान से कहो, 'मुझे बीवी दो, मुझे बीवी दो' तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। पूरा विधान बदलना पड़ेगा।

जो भगवान ने मुझे नहीं दिया, वह इसलिए कि मुझे उसकी जरूरत नहीं थी। अब यह मुझ पर लागू होता है तो तुम पर भी लागू होता है। अगर भगवान ने तुम्हें कुछ नहीं दिया, तो इसलिए नहीं दिया कि तुम्हें उसकी जरूरत नहीं है। मेरा एक शिष्य है, उसकी पाँच बेटियाँ हैं। हमने उससे कहा, जब भगवान को तुम्हें बेटा नहीं देना था, तो नहीं दिया। अब दोनों मियाँ-बीवी स्वतन्त्र हो गये हैं। बच्चियों की शादी कर दी, वे ससुराल चली गयीं। उनके बेटे-बेटी भी हो गये। वे आराम से योग सिखाते हैं, कभी मद्रास जाते हैं, कभी नेपाल जाते हैं, कभी सिंगापुर जाते हैं, मस्त रहते हैं। बेटा होता तो पैर की बेड़ी बन जाता। लड़की तो पैर की बेड़ी बनती नहीं है, मगर लड़का तो पैर की बेड़ी बन जाता है। इतने सालों के बाद वे समझे। मैंने उनसे कहा, 'देखो, जो भगवान ने तुम्हें नहीं दिया, उसकी जरूरत तुम्हें नहीं है। तो फालतू मुझसे क्यों कहते हो कि भगवान के यहाँ सिफारिश कर दो, कुछ जादू कर दो, कुछ चमत्कार कर दो।'

जब तुम निराश्रय हो जाते हो, जब तुम्हारे लिए कोई आसरा नहीं बचता, जब तुम्हारा शरीर पूरी तरह थक और टूट जाता है, जब मन काम नहीं करता, तब तुम्हारी आत्मा उनसे मिलने के लिए स्वतन्त्र हो जाती है। बल्ब टूट जाता है, ऊर्जा पावर-हाउस में लौट जाती है। इसीलिए इस शताब्दी में वैज्ञानिकों की मानसिक विचारधारा और उनके प्रयोग करने के तरीके अन्दर की तरफ हों, सूक्ष्म की तरफ हों, इसका उपाय हमें निकालना है। उस उपाय को निकालने का केवल एक तरीका है। आस्थाहीन, विश्वासरहित और भोगासक्त संस्कृति को दीक्षा देनी है। जब तक ये लोग इस रास्ते पर नहीं आयेंगे, तब तक वैज्ञानिक केवल पदार्थ पर ही प्रयोग करते रहेंगे, जो आज तक हो रहा है और जिसका परिणाम मौजूद है।

इस शताब्दी में आध्यात्मिक मार्ग में जो प्रयोग होंगे, भक्ति को आधार बनाकर होंगे। यह मुझे स्पष्ट मालूम पड़ता है, क्योंकि पाश्चात्य देशों में उनकी रुचि इस तरफ बहुत ज्यादा है। वहाँ लोगों का झुकाव भक्ति पक्ष की तरफ बहुत है। भक्तियोग वैज्ञानिकों के लिए शोध का अगला विषय अवश्य हो सकता है।

भावना का भक्ति में रूपान्तरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भावना को भक्ति में बदलने के लिये केवल बौद्धिक प्रयास नहीं किया जाता, बल्कि अपनी परिस्थितियों को भी बदलना चाहिए। सबसे अच्छा है कि किसी ऐसे आश्रम में चले जाना चाहिए, जहाँ हम अपनी भावनाओं को भक्ति का रूप दे सकें। भावना को भक्ति का रूप देने के लिये पहले साँचा तैयार करना पड़ता है, वह साँचा है गुरु। अपनी भावना को भक्ति के रूप में ढालने के लिये पहले गुरु के साथ भावनात्मक रूप से भक्ति का सम्बन्ध होना चाहिए। जब गुरु और शिष्य में विश्वासपूर्ण सम्बन्ध होता है, एकमनस्कता आती है, तब उसके बाद भक्ति गहरी होती है।

गुरु भक्ति वास्तव में ईश्वर के प्रति की जाने वाली भक्ति ही होती है। सब धर्मशास्त्रों में, उपनिषदों में और सत्पुरुषों ने यही कहा है। इसमें सबसे कठिन चीज है गुरु का चयन। गुरु आखिर मनुष्य होता है, जैसे पाँच भूतों से तुम्हारे शरीर का निर्माण हुआ है, वैसे ही उसका भी होता है। जैसे तुम त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहते हो, वैसे ही वह भी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहता है। स्वाभाविक रूप से वह पूर्ण नहीं हो सकता, यह पहली बात शिष्य को समझनी होगी। अगर शिष्य समझता है कि गुरु में वह हर समय सम्पूर्णता देखे, तो वैसा नहीं हो सकता। गुरु तो गुरु ठहरे, भगवान राम या कृष्ण में भी दोष दिखाई देगा, और दोष होता भी है – *काजल की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय, एक दाग वाहु को लागिहै पै लागिहैं।*

गुरु बनाने के लिए इस बात का हमेशा ध्यान रखना, हर मनुष्य का एक स्वभाव होता है, वह स्वभावत: आदर्शवादी होता है। मतलब उसके सामने कुछ आदर्श होते हैं, वह उन आदर्शों को ही देखना चाहता है। तुम मुझमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हो। तुम्हारे अंदर जो आदर्श है, तुम उसका प्रतिबिम्ब मुझमें देखना चाहते हो। तुम्हारे अंदर आदर्शवाद की जो भावना है, या कुण्ठा है, वह तुम मुझमें देखना चाहते हो, देख नहीं पाते हो। हम सौ प्रतिशत खरे उतर ही नहीं सकते, क्यों? इसलिए कि तुम्हारा जो आदर्श है, कोई कुण्ठा है, उस एक मनोवैज्ञानिक बाधा को तुमने अपने अंदर तैयार कर लिया है।

तुम्हारे मन में जो यह चीज है उसे मनोविज्ञान में कुण्ठा कहते हैं। वह तुम्हारे व्यक्तित्व की बाधा है। हर मनुष्य अपने लक्ष्य को, अपनी पसंद को देखता है और यह देखता है कि वह पसंद अपने को वहाँ मिलती है कि नहीं। अब दुकान में साड़ी खरीदने के लिए गये। देखते हो कि बेचने वाला ब्राह्मण है कि बनिया। तुम्हें ब्राह्मण या बनिया से क्या मतलब? तुम अच्छी साड़ी खरीदना चाहते हो, पर साथ ही यह भी चाहो कि बेचने वाला आदमी भी बुड्ढा होना चाहिए, ब्राह्मण कुल का होना चाहिए, न लम्बा होना चाहिये न छोटा होना चाहिए। इसे हम लोग आदर्शवाद कहते हैं। आदर्शवादी आदमी अपने मन में एक बाधा तैयार कर लेता है। वह बाधा वह अपनी सुरक्षा के लिए तैयार करता है, क्योंकि मूलत: हर आदमी असुरक्षित है। मनुष्य के अंदर चार मूल प्रवृत्तियाँ हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। भय का मतलब असुरक्षा।

असुरक्षा का भाव सब लोगों में विद्यमान है। इसलिए गुरु को खोजते समय यह एक चीज देखनी पड़ती है।

शिवानन्द आश्रम

जब हम ऋषिकेश गये तो पहले हम कैलास आश्रम गये थे। हमने कहा, हम संन्यास लेंगे, तो स्वामी विष्णुदेवानन्द जी ने कहा कि हम तो संन्यास नहीं देते, पर जब तुम संन्यास लोगे उस समय हम हाजिर रहेंगे। तुम स्वामी शिवानन्द जी के पास चले जाओ। अच्छे साधु हैं, पढ़े-लिखे आदमी हैं, तुम भी पढ़े-लिखे हो।

हम वहाँ गये। हमने स्वामीजी को देखा, उनसे कहा कि हम आपके यहाँ रहने के लिये आए हैं। उन्होंने कहा, 'ठीक है, रहो। सबसे पहले अपना आईना साफ करो। और जो कुछ तुम पाना चाहते हो वह तो तुम्हारे अंदर है, मेरे अंदर थोड़े ही है।' गुरु कुछ थोड़े ही देता है, समझ रहे हो न? उस शिला का देव मिथ्या है, सत्य जो है वह तुम्हीं हो। आत्मा, सत्य अपने अंदर है। चेतना अपने अंदर है। ज्योति अपने अंदर है। जो चीज है, वह अपने अंदर है।

या घट भीतर सात समन्दर कोई मीठा कोई खारा।
या घट भीतर नौ लख मोती कोई पन्ना कोई हीरा।
या घट भीतर सर्जनहारा, अवधू अन्धाधुँध अँधियारा॥

अंधकार के परे एक प्रकाश होता है, वह अपने अंदर होता है। इतना भर देख लेना कि गुरु के साथ गाँठ बँध जाये, बस। अब वह गुरु दो-तीन बार चाय पीता है, वह गुरु चमड़े का जूता पहनता है, वह गुरु दिन में सोकर खर्राटे मारता है – यह सब क्यों देखते हो? जब दिल लग गया, तब दिमाग का काम नहीं होता। जब दिल लग गया, जब मोहब्बत हो गई, तब दिमाग को बीच में नहीं आने देना, नहीं तो वह सब गड़बड़ कर देगा। इसलिए भावना को भक्ति के रूप में बदलने के लिये गुरु के साथ सम्बन्ध जोड़ो।

गुरु सेवा

गुरु की सेवा अनेक प्रकार की होती है। भगवान श्रीकृष्ण संदीपनी के यहाँ लकड़ी इकट्ठा करते थे। कहानी मालूम है न आप लोगों को? इसी तरह श्रीराम वशिष्ठ जी के यहाँ रहते थे। रामजी अयोध्या के राजकुमार थे। वशिष्ठ गुफा

ऋषिकेश से सोलह मील आगे ब्रह्मपुरी के पास है। गंगा के ठीक किनारे शत्रुघ्न जी रहते थे, स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम के बगल में। भरत जी ऋषिकेश में ही रहते थे। जहाँ आज लक्ष्मण झूला है, वहाँ लक्ष्मण जी रहते थे। चार भाई, चार जगह रहते थे और वशिष्ठ जी वहाँ से सोलह मील दूर रहते थे। त्रेता युग में भगवान राम के अगल-बगल कितने शेर-बाघ घूमते होंगे! गुरु के साथ ऐसा जीवन बिताया जाता है। रामजी ने गुरुजी के साथ अपना जीवन बिताया, खुर्पी लगायी, गाय-बैलों की सेवा की, आश्रम के लिए लकड़ी चुनी। हो सकता है कि अरुंधती के कपड़े भी धोये होंगे, क्या मालूम? सब कुछ किया होगा, सेवा की होगी। गुरु आश्रम में रहने पर उनको आश्रम के नियमों का पालन करना पड़ता होगा, जमीन पर सोना पड़ता होगा। प्राचीन काल में ये सब नियम थे। वही कठिन जीवन था श्रीराम जी का, जो उन्होंने अपने गुरुजी के आश्रम में पाया – *गुरुगृह पढ़न गये रघुराई, अल्पकाल विद्या सब पाई।*

जिसके मुँह से वेद और श्रुतियाँ निकलती हैं, वह भी लीला करने के लिए संसार में पढ़ने जाता है। पढ़ने का नाटक करता है। बाद में जब रामचन्द्र जी का वनवास हुआ तब उस वनवास में उन्हें जितना कष्ट था वह कुछ महसूस ही नहीं हुआ, क्योंकि गुरु आश्रम की तपस्या जीवन के कष्ट को हल्का बना देती है। गुरु के आश्रम की जो तपस्या है, जो सेवा है, वह ऐसी होती है कि जीवन में आने वाले जो कई प्रकार के कष्ट होते हैं, दु:ख रूपी कष्ट होते हैं, गरीबी का कष्ट होता है, भूख कष्ट देती है, प्यास कष्ट देती है, रोग कष्ट देता है, निन्दा कष्ट देती है, वे सब हल्के पड़ जाते हैं।

भावना को भक्ति में बदलना बच्चों का खेल नहीं है। मीराबाई की भावना भक्ति में बदली, क्योंकि वे बहुत भोली थीं। उन्होंने बुद्धि का उपयोग नहीं किया। उन्होंने भावना का ही उपयोग किया। अगर बुद्धि का उपयोग करतीं तो कहतीं, 'अरे! लकड़ी की मूरत कैसे मेरा पति हो सकती है?'

लकड़ी की मूरत कैसे पति हो सकती है, यह बुद्धि कहती है, पर उन्होंने कृष्ण जी को बचपन से ही, जब उन्हें वह मूरत दी गयी थी, तब से ही अपना पति मान लिया था। जिसके साथ शादी होती है उसे कहते हैं पति। जिसके साथ औरत जीवन भर रहती है, उसे कहते हैं पति। अब उन्होंने अपनी भावना को भक्ति में बदल दिया और वे सफल भी हुयीं। जब भावना भक्ति में बदलती है तब बहुत शक्तिशाली हो जाती है – *विष का प्याला राणा भेज्याँ पीवाँ मीरा हाँसी री।*

वह कहानी तो आपको मालूम है। उनके जीवन में एक चमत्कार हो गया। चैतन्य महाप्रभु के साथ भी ऐसा हुआ। वे तो बुद्धिजीवी थे। न्याय शास्त्र के आचार्य थे, जिसे आजकल पी.एच.डी. कहते हैं। न्याय शास्त्र पर तो उन्होंने शोध-पत्र लिखा था, इतने बुद्धिमान् थे! लेकिन उन्होंने अपनी बुद्धि को किनारे रखकर भगवान के साथ जो सम्बन्ध जोड़ा, वह सम्बन्ध कोई दिमाग वाला नहीं जोड़ सकता। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के साथ जो सम्बन्ध जोड़ा, वह खोपड़ी में तो नहीं अँटता है। सीधी-सादी बात है। न मीरा की भावना हमारे दिमाग में अँट सकती है, न चैतन्य महाप्रभु की, और यहाँ तक कि परमहंस रामकृष्ण जी की भी काली के प्रति जो भावना है, वह भी बुद्धि का विषय नहीं है। इसलिए भावना को भक्ति में बदलने के लिए पहले तो बुद्धि को सेवानिवृत्ति दे दो, उसे बर्खास्त करा दो।

तर्क-वितर्क और बुद्धि-विलास, ये सब आध्यात्मिक जीवन में नहीं चलते। क्यों नहीं चलते? इसलिए कि जिसे तुम खोज रहे हो उसे तो किसी ने देखा ही नहीं है। तुम्हारे पास कोई प्रमाण नहीं है, तुम्हारे पास कोई चार्ट भी नहीं है कि भाई इस रास्ते से जाओ, कोई टाईम-टेबल नहीं है, कोई रास्ता मालूम नहीं है। भगवान स्त्री है कि पुरुष है, आदमी है कि जानवर है, भगवान है कि नहीं है। शून्य है तो क्या चीज है। शून्य क्या है? बोलो, समझाओ। उन्हें निर्गुण भी कहते हैं। निर्गुण का क्या मतलब होता है?

भगवान तर्क का विषय नहीं है। भगवान बुद्धि का विषय नहीं है। भगवान भावना का विषय है और वह भावना भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। *सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा* – परम प्रेम ही भक्ति का स्वरूप है। भक्ति केवल प्रेम नहीं, परम प्रेम है। पी ले पी ले हरि नाम का प्याला, उसको पीकर और पिलाकर बन जा तू मतवाला! मतवाला! मतवाला! परम प्रेम को पीकर और पिलाकर बन जा तू मतवाला। यहाँ तीन बार मतवाला कहा है, केवल एक बार हल्का मतवाला नहीं, मतवाला का मतलब पी लिया और शराब पीकर जमीन पर गिर गया। शराब पीकर तो ऐसा ही होता है, तीसरी अवस्था में दीन-दुनिया की कोई खबर नहीं रहती है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

अगर दिल भगवान में रमने लगा और घर-गृहस्थी करनी ही नहीं है तो फिर घर-गृहस्थी में रहना ही क्यों? मुझे तो समझ में ही नहीं आता है। घर-गृहस्थी

करनी हो तो रहो, फिर वह रास्ता दूसरा है। शादी करो, बच्चा पैदा करो, यह करो तो वह करो। वह भी एक रास्ता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ये दो निष्ठाएँ हैं, प्रवृत्ति और निवृत्ति –

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

अर्थात् इस लोक में दो प्रकार की निष्ठाएँ मेरे द्वारा पहले कही गयी हैं। उनमें से सांख्य योगियों की निष्ठा तो ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। एक प्रवृत्ति मार्ग है, दूसरा निवृत्ति मार्ग है। जब शादी करनी ही नहीं है, किसी तरह कमाना ही नहीं है, कुछ करना ही नहीं है तो प्रवृत्ति मार्ग में आदमी क्यों रहे? और निवृत्ति मार्ग में जाकर फिर प्रवृत्ति करे। आखिर हम भी तो इतने साल प्रवृत्तिमय जीवन में रहे, मगर यह प्रवृत्ति निवृत्तिमय प्रवृत्ति थी। निवृत्तिमय प्रवृत्ति का जीवन पर कुछ असर नहीं पड़ता, बीज नहीं बनते, कर्म नहीं बनते और भावना का अपने आप धीरे-धीरे कायाकल्प होते जाता है।

यह संक्षेप में कहा, नहीं तो यह बहुत बड़ा विषय है। हमारे शास्त्रों में भक्ति मार्ग के विषय में यही तो लिखा हुआ है। आखिर भावना को पारिभाषित करो कि भावना क्या है, भावना का क्या रूप है? भावना को कैसे पारिभाषित करोगे? हृदय का मतलब क्या होता है? इसलिए एक ही चीज है, 'जब मन में वैराग्य का भाव उदय हो, उसी समय मनुष्य को संसार त्याग देना चाहिए, नहीं तो मन फिर उलट जायेगा।' यह उपनिषद् का वाक्य है।

यह जो वैराग्य है, यह बहुत ऊँची चीज है। यह मन में जागे तो किसी आश्रम में जाकर रहना चाहिए। हिन्दुस्तान में अनेक अच्छे आश्रम हैं। हमारे आश्रम में शिष्य को पूजा-पाठ करने की जरूरत नहीं, दिन-रात केवल सेवा, ताकि मन न यहाँ रहे न वहाँ रहे। अधर में लटका रहे। स्वामी निरंजन का मन कहाँ रहता है? बेचारे का मन अधर में लटका रहता है। उसके मन में एक पैर रखने की जगह भी नहीं मिलती। पैर रखते ही उसका कर्त्तव्य आ जाता है। याने एक छोटा-सा उदाहरण दे रहा हूँ। और हमारा भी ऐसा ही हाल था। हमें तो बहुत साल तक यह पता ही नहीं चला कि हमारा मन है। इसीलिये आश्रम में सेवा, शारीरिक श्रम होता है। छोटी-से छोटी सेवा भी महान् से महान् वरदान देती है।

श्रद्धा का जागरण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्रद्धा मनुष्य की विशिष्ट सम्पदा होती है। मनुष्य के अस्तित्व के पीछे श्रद्धा मुख्य तत्त्व है। मनुष्य को जिन्दा रखने के लिये केवल भोजन और धन ही आवश्यक नहीं है, बल्कि मनुष्य श्रद्धा के बल पर ही जीवित है। कभी-कभी श्रद्धा अव्यक्त रहती है। कभी-कभी व्यक्ति श्रद्धा का अन्त कर देता है तो कभी उसका संरक्षण करता है, और कभी-कभी उसे पुष्ट कर बढ़ाता है।

श्रद्धा और विश्वास दो अलग वस्तुएँ हैं। विश्वास का सम्बन्ध मन से और श्रद्धा का अध्यात्म से होता है। निर्मल लोगों में श्रद्धा होती है। इसके कुछ उदाहरण बाइबिल में भी मिलते हैं। एक बार ईसा मसीह की आज्ञा से संत पीटर समुद्र पर चलने लगे। परन्तु जैसे ही उन्हें शंका हुई, वे डूबने लगे। जल पर चल सकना श्रद्धा का चमत्कार था। जितनी देर उनकी श्रद्धा परिपूर्ण रही, वे पानी पर चले, परन्तु जैसे ही श्रद्धा डगमगाई, वे डूबने लगे। संत-महात्माओं के जीवन में श्रद्धा पर आधारित ऐसी अनेक घटनाएँ देखने को मिलती हैं।

यदि हम अपने भीतर निर्दोष श्रद्धा को बनाये रखें, उसे बुद्धि द्वारा भ्रष्ट न होने दें तो जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हम न कर सकें।

यदि आप हिन्दू, मुसलमान या ईसाई संत-महात्माओं के जीवन पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि वे आश्चर्यजनक रूप से श्रद्धावान् थे, समाज के गरीब तबके से आए थे और प्रायः अनपढ़ थे। ईसा मसीह बढ़ई थे, रामकृष्ण परमहंस पचास रुपये मासिक वेतन पर दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पुजारी थे। स्वामी विवेकानन्द इतने गरीब थे कि कभी-कभी उन्हें भोजन के लिए भिक्षा माँगनी पड़ती थी। इन महापुरुषों का धन क्या था? क्या वह बुद्धि अथवा राजनैतिक सत्ता थी? नहीं। उनका धन पवित्र श्रद्धा थी। यदि मुझमें श्रद्धा है तो मैं पहाड़ को भी हिला सकता हूँ, समुद्र को भी सुखा सकता हूँ। श्रद्धा देवत्व की चिंगारी है जो प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात रहती है।

मेरी मान्यता है कि ईश्वर और श्रद्धा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस क्षण आपमें श्रद्धा का उदय होता है, उसी क्षण ईश्वर का साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार और श्रद्धा का उदय एक साथ घटित होता है। इस बात को अन्य ढंग से भी कह सकते हैं कि ईश्वर निराकार है, वह एक सूक्ष्म, अमूर्त अनुभव है। आपके चर्मचक्षु तथा सीमित मन उसे देख अथवा समझ नहीं सकते। आप अपनी सीमित जागरूक चेतना द्वारा उसे प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु जब श्रद्धा जागती है तो ईश्वर साक्षात्कार बिना किसी प्रयास के हो सकता है।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व का अंश होता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी बीज रूप में सबमें रहती है। आवश्यकता उसे विकसित और विस्फोटित करने की है। यदि आप प्यासे हैं और नदी के किनारे खड़े होकर पानी-पानी की रट लगायें, तो इससे आपकी प्यास नहीं बुझेगी। इसके लिए आपको नदी में उतरकर पानी पीना होगा। श्रद्धा के महत्त्व को मात्र समझ लेने से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उसके विस्फोट की प्रक्रिया बड़ी धीमी होती है। श्रद्धा का प्रारम्भ गुरु से और अन्त ईश्वर में होता है। गुरु एक मनुष्य होता है। वे भौतिक शरीर में एक महान् आत्मा होते हैं। जब आप श्रद्धा को बढ़ाना चाहते हैं तो वह आँखों से दिखने वाले किसी स्वरूप के आसपास ही पनप सकती है। यही कारण है कि श्रद्धा की यात्रा गुरु अथवा सन्त-महात्मा से प्रारम्भ होती है। थर्मामीटर के पारे की तरह एकाएक श्रद्धा विकसित नहीं हो सकती।

यदि आप अपने बच्चे को उच्च शिक्षा देना चाहते हैं तो क्या पहले आप उसे विश्वविद्यालय में दाखिला दिलायेंगे? नहीं। सर्वप्रथम आप उसे किंडरगार्टेन

की प्रारम्भिक कक्षा में भर्ती करते हैं। फिर वह बच्चा प्रतिवर्ष परीक्षाएँ पास करता हुआ स्कूल, कॉलेज तथा अन्त में विश्वविद्यालय तक पहुँचता है। इसी प्रकार श्रद्धा की यात्रा गुरु से प्रारम्भ होकर ईश्वर में समाप्त होती है।

बुद्धि श्रद्धा की सबसे बड़ी दुश्मन है। मैं तो उसे श्रद्धा के लिए विष कहता हूँ। यही कारण है कि शास्त्र कहता है, 'बालवत् बनो'। वह बचकानी हरकतें करने की सलाह नहीं देता। बुद्धिजीवी बचकानी हरकतें करता है। बालवत् का अर्थ है, शिशु की पवित्रता, योगी का ज्ञान और दयालु की उदारता।

बहुधा लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं किस प्रकार कार्य करता हूँ। मैं उन्हें इस प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं देता, क्योंकि मेरा जीवन तथा कार्य दोनों श्रद्धा से प्रेरित हैं। मुझे स्वयं में, लोगों में और मानवता के भविष्य में श्रद्धा है। यदि यह सही न उतरे तब भी मुझे चिन्ता नहीं। मैं हर एक कार्य को केवल बुद्धि से करने में विश्वास नहीं रखता। मैं अपने चालीस-पैंतालीस वर्षों के अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि जीवन तथा मानवता की समस्याओं को केवल बौद्धिक उपायों से हल करने का प्रयास निरर्थक है।

अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा कि श्रद्धा के शब्दकोश में 'असंभव' नामक कोई शब्द नहीं है। श्रद्धा और आत्मविश्वास के आधार पर कुछ भी असंभव नहीं है। श्रद्धा के द्वारा असाध्य बीमारी दूर कर सकते हैं। अपने बुरे-से-बुरे स्वभाव को रातों-रात बदल सकते हैं। भले ही जीवन में आपके साधन कितने ही सीमित क्यों न हों, श्रद्धा की उपलब्धि होते ही आप आत्म-साक्षात्कार जैसी दुर्लभ निधि प्राप्त कर सकते हैं। अब आप ही बताइए कि यदि आपके पास श्रद्धा की निधि हो, तो फिर आपके लिए क्या असंभव हो सकता है?

होनहार बिरवान के होत चीकने पात– श्री स्वामीजी के पूर्वाश्रम का जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानंद जी का एक विलक्षण और अद्भुत जीवन रहा है, और उनकी भावी महानता की झलक उनके पूर्वाश्रम के जीवन से ही स्पष्ट दिखलायी देती है। आपको स्मरण होगा स्वामी शिवानंद जी 1924 में ऋषिकेश पधारे थे। 1924 के पूर्वार्ध में वे ऋषिकेश पहुँचकर संन्यास में दीक्षित हुए थे और कठोर साधना संपन्न करके, फिर 'दिव्य जीवन संघ' संस्था की स्थापना करके वे व्यावहारिक वेदांत की शिक्षा का प्रसार पूरे दुनिया में करते हैं। जब स्वामी शिवानंद जी मलाया छोड़कर भारत आए थे और भारत की धरती पर उनका पदार्पण हुआ था, उसी समय भारत की धरती पर एक और महान् विभूति का अवतरण भी हुआ था।

इस महान् विभूति का अवतरण, जिन्हें आज हमलोग स्वामी सत्यानंद सरस्वती के रूप में जानते हैं, हिमालय की गोद में, कुमाऊँ क्षेत्र में अल्मोड़ा के पास के एक गाँव में एक क्षत्रिय जमींदार के घर हुआ था। जब इनका जन्म

हुआ था उस समय माता-पिता ने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जो नाम इनको दिया, वह था धर्मेंद्र। धर्मेंद्र अर्थात् जो धर्म का राजा हो, और यह कितना सुंदर नाम था जिसने उनके जीवन के व्यवहार और दिशा को निश्चित किया। आखिर हमारे गुरुदेव का पूरा जीवन धर्म से ही जुड़ा रहा।

समस्त धर्मों एवं कर्मों का निष्पादन

एक बार पूज्य गुरुदेव की समाधि के पश्चात् जब विभिन्न तीर्थों में जाकर हम अनुष्ठान किया करते थे तो केदारनाथ भी गए थे। केदारनाथ में अनुष्ठान के दौरान भारत के एक महान् वैष्णव संत का दर्शन करने का लाभ भी हमें मिला था। जब हमने अपना परिचय उन महात्मा को दिया कि हम स्वामी सत्यानंद जी के शिष्य हैं, तो उन्होंने पूछा कि 'वे कैसे हैं?' हमने बतलाया कि वे तो समाधि ग्रहण कर चुके हैं। जैसे ही उन्होंने इस वाक्य को सुना उन्होंने तुरंत अपनी आँखें बंद कर लीं और कुछ मिनटों तक एकदम शांत, एकचित्त होकर बैठे रहे, जैसे वे पूज्य गुरुदेव के जीवन-क्रम के द्रष्टा बन रहे हों। उसके बाद आँखें खोलकर हम से कहते हैं, 'स्वामी सत्यानंद जी जैसा दूसरा संत इस धरती पर हुआ नहीं है, जिसने अपने जीवन में सभी धर्मों का और कर्मों का साक्षी बनकर पालन किया है। आज तक कोई भी संन्यासी ऐसा नहीं हुआ है।'

उनके मुख से ऐसा वाक्य निकलना कि स्वामी सत्यानंद जी ने अपने जीवनकाल में सभी धर्मों और कर्मों का पालन किया है, यह एक बहुत बड़ी चीज थी। एक सिद्ध महात्मा के मुख से इस प्रकार की वाणी निकल रही है, जो द्रष्टा हैं, जिन्होंने देखा है कि किस प्रकार हमारे गुरुदेव का जीवन रहा है। हमलोग भले ही उन्हें समझ नहीं पाये। उन्हें एक साधु के रूप में देखा – बहुत अच्छे साधु हैं। एक योगी के रूप में देखा कि बहुत अच्छा योग सिखाते हैं। इस तरह हमलोगों की दृष्टि हमेशा भौतिक रही और भौतिकता के तराजू पर हमलोग अपने गुरुजी को देखते आए। समाज भी उनको ऐसी नज़र से देखता रहा। लोग तो ऐसा भी कह देते कि स्वामीजी गरीब रूप में मुंगेर आए और यहाँ पर अट्टालिका बना दी, पता नहीं पैसा कहाँ से आता है। ऐसा दृष्टिकोण रहता था लोगों का! वे उनकी महानता को, गुरुत्व को देख नहीं पाये, समझ नहीं पाये। आज भी विश्व में लोग उनके इस गुरुत्व को समझ नहीं पाते हैं, लेकिन भौतिकता के स्तर से ऊपर उठकर जब आध्यात्मिकता के स्तर पर लोगों को देखा जाता है, उनको तौला जाता है, तब एक व्यक्ति की महानता सिद्ध होती है।

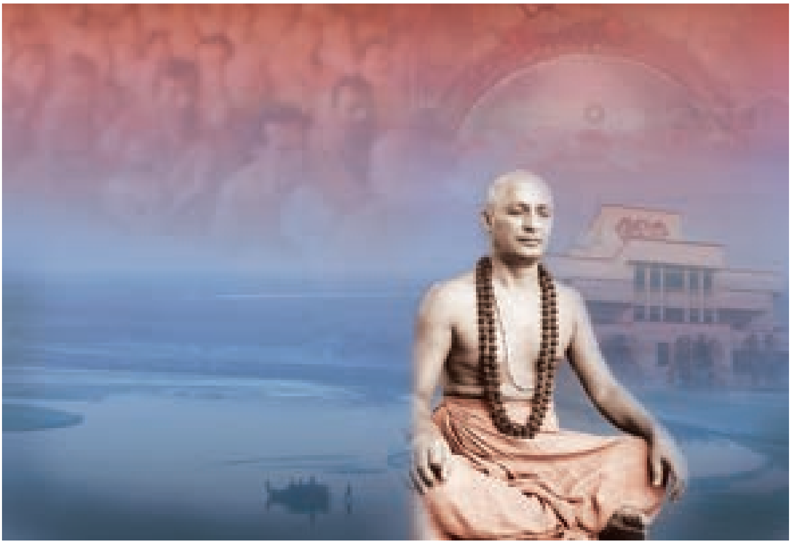

हमारे समाज में संन्यासी अनेक हैं और एक सिद्ध पुरुष का कहना कि आज तक मैंने किसी को इस प्रकार का जीवन जीते नहीं देखा है, जहाँ सभी धर्मों और कर्मों का पालन किया गया है, एक बहुत बड़ी बात है। इसकी आधारशिला उनके नाम से स्थापित होती है – धर्मेंद्र, जो धर्म का पालक है, जो धर्म का पालन-पोषण करता है, जो धर्म के मार्ग पर चलता है, जो धर्म का राजा होता है। और वास्तव में धर्म का राजा कौन है? आप-हम नहीं हैं, धर्म के राजा या तो देवता होते हैं या फिर सिद्ध महापुरुष होते हैं। अब ये कौन हैं, वह तो इतिहास ही बताएगा।

वंश परम्परा

स्वामी सत्यानंद जी के पिताजी पुलिस विभाग में अधिकारी थे, पुलिस की नौकरी में उनको कुमाऊँ क्षेत्र के अलग-अलग स्थानों में जाकर अपना कर्तव्य निभाना पड़ता था। उनकी माताजी एक नेपाली महिला थीं, पिताजी का जमींदार परिवार था। इनके पुरखों ने पूर्व के अनेक युद्धों में भाग लिया था और इनके पराक्रम से प्रभावित होकर राजा ने इन्हें हजारों एकड़ भूमि और गाँव दान में दिये थे। जब हमारे गुरुदेव का जन्म होता है उस समय युद्ध वगैरह का तामझाम तो सब समाप्त हो गया था और ये लोग बहुत ही सात्त्विक, सरल, देहाती जीवन व्यतीत करते थे।

हमारे गुरुदेव का जन्म सूर्यवंश में हुआ। भारत में अनेकों जनजातियाँ हैं और कुछ ऐसी हैं जिनका जन्म या तो सूर्यवंश में हुआ या चंद्रवंश में। कृष्ण जी का जन्म चंद्रवंश में हुआ था, राम जी का जन्म सूर्यवंश में हुआ था और इन वंशों में भी अलग-अलग धाराएँ हैं, जिनको हमलोग कुल कहते हैं। सूर्यवंश के रघुकुल में, जो श्रीराम का कुल था, उसमें स्वामीजी का जन्म हुआ था। घर में श्रीराम इनके आराध्य और इष्ट रहे, प्रारंभ से ही श्री स्वामीजी का श्रीराम से बहुत अंतरंग संबंध रहा।

प्रथम आध्यात्मिक अनुभव

कुमाऊँ की धरती पर धीरे-धीरे बालक बड़ा होता है और जब छह साल का होता है, तब परिवार के लोग देखते हैं कि बहुत बार अचानक यह अपने देह की सुध खो देता है। अगर कहीं पर खड़ा है तो खड़ा ही है, बैठा है तो बैठा ही है और बहुत बार बेहोश होकर धरती पर गिर भी पड़ता है। छह साल के बालक की ऐसी अवस्था देखकर परिवार वाले निश्चित रूप से चिंतित हुए। सोचा कि इसको कोई बीमारी होगी और इसे वे चिकित्सकों के पास उपचार के लिए ले जाते हैं। जब चिकित्सक इस बालक की जाँच-पड़ताल करते हैं तो कोई भी बीमारी या रोग नहीं पाते हैं। परिवार के लोग सोचते थे कि बेहोश होकर गिर पड़ता है या शरीर की सुध खो देता है, तो इसका मतलब दिमाग की बीमारी होगी, मिर्गी जैसा रोग होगा, लेकिन चिकित्सकों ने कहा कि इसको कोई रोग नहीं है, इसका मस्तिष्क और शरीर एकदम ठीक है। कहीं पर किसी रोग या बीमारी के लक्षण नहीं दिखलाई दे रहे थे और परिवारवालों की समझ में नहीं आता था कि क्या हो रहा है।

इस खोजबीन में समय बीता और जब परिवार को लगा कि चिकित्सक हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते हैं, तब फिर उन लोगों ने साधुओं का चक्कर लगाना शुरू किया। पूछने लगे कि बालक में क्या दोष है जिसके कारण यह अपनी सुध-बुध खो देता है, बेहोश हो जाता है। जो घुमक्कड़-फक्कड़ साधु थे, वे कहते थे, 'यह भस्म खिला दो, वह औषधि खिला दो, ठीक हो जाएगा', लेकिन जो महात्मा साधु थे, जो भस्म वगैरह की चिकित्सा नहीं करते, न उसके बारे में जानते हैं, वे तो केवल ईश्वर को जानते हैं, वे कहते थे कि 'यह लड़का जो अनुभव कर रहा है, वह ध्यान और समाधि की उच्च अवस्था है।' भारत के महान् संत, जो उस समय अल्मोड़ा होकर कैलास-

मानसरोवर की यात्रा के लिए जाया करते थे, इस बालक को देखकर ऐसी बात कहा करते थे।

इसी क्रम में एक दिन आनंदमयी माँ भी हिमालय की यात्रा में अल्मोड़ा से गुजर रही थीं। उनका नाम उस समय बहुत प्रचलित था, तो माता-पिता इस बालक को आनंदमयी माँ के पास ले जाते हैं। बालक को देखकर आनंदमयी माँ कहती हैं, 'नहीं, इसको कोई रोग या बीमारी नहीं है। जब यह अचेतन अवस्था में रहता है, तो तुम्हारे और संसार के प्रति अचेतन है, बेहोश है, लेकिन उस समय यह समाधि की उच्च अवस्थाओं में भ्रमण करते रहता है।' ये थे आनंदमयी माँ के शब्द, क्योंकि वे देख सकती थीं कि इस बालक के संस्कार क्या हैं।

इस प्रकार छह वर्ष की अवस्था से ही इस बालक के पूर्व जन्म के संस्कार प्रबल और जागृत हो गए थे। बालक को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण भी था, लेकिन तोतली भाषा में वह क्या बोलता? योग और अध्यात्म के संस्कार जीवंत हो उठे थे, जिनके कारण यह बालक इस जीवन में छह वर्ष की अवस्था से ही ध्यान और समाधि की उच्च अवस्थाओं का अनुभव करने लगा था। किसी को बोल भी नहीं सकता था और कोई उसे समझ भी नहीं सकता था। जो उसे समझ पाते थे, वे थे इक्के-दुक्के संत, जैसे आनंदमयी माँ और स्वामी श्रद्धानंद। ऐसे संत-महात्मा इस बालक को देखकर निश्चित रूप से प्रसन्न हुये होंगे कि कितने सुंदर संस्कारों से युक्त होकर इस बालक ने इस धरा पर जन्म लिया है! मानवता को सन्मार्ग पर ले जाना ही इसके जीवन का उद्देश्य है।

समाधि का यह अनुभव पूज्य गुरुदेव के जीवन में करीब छह साल तक चला। इस बीच वे अपने गाँव के विद्यालय में जाकर प्रारंभिक शिक्षा आरंभ करते हैं। बारह साल की उम्र तक उन्हें समाधि का अनुभव सप्ताह में लगभग दो-तीन बार हमेशा होते रहा और उसके साथ-ही-साथ प्राइमरी स्कूल का अध्ययन भी चलता रहा। उस समय का प्राइमरी स्कूल आज के जैसा नहीं रहता था, चार दीवारों में बंद, बल्कि खुले आसमान के तले एक पेड़ के नीचे अध्यापक बैठते थे और पाठ पढ़ाते थे, शिक्षा देते थे। ऐसे परिवेश में गुरुदेव ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की।

जादुई डंडा

इसी क्रम में एक अन्य संन्यासी का आगमन होता है, जिनका नाम था स्वामी श्रद्धानंद। ये भी हिमालय की यात्रा में जा रहे थे। गुरुदेव के छोटे-से गाँव में

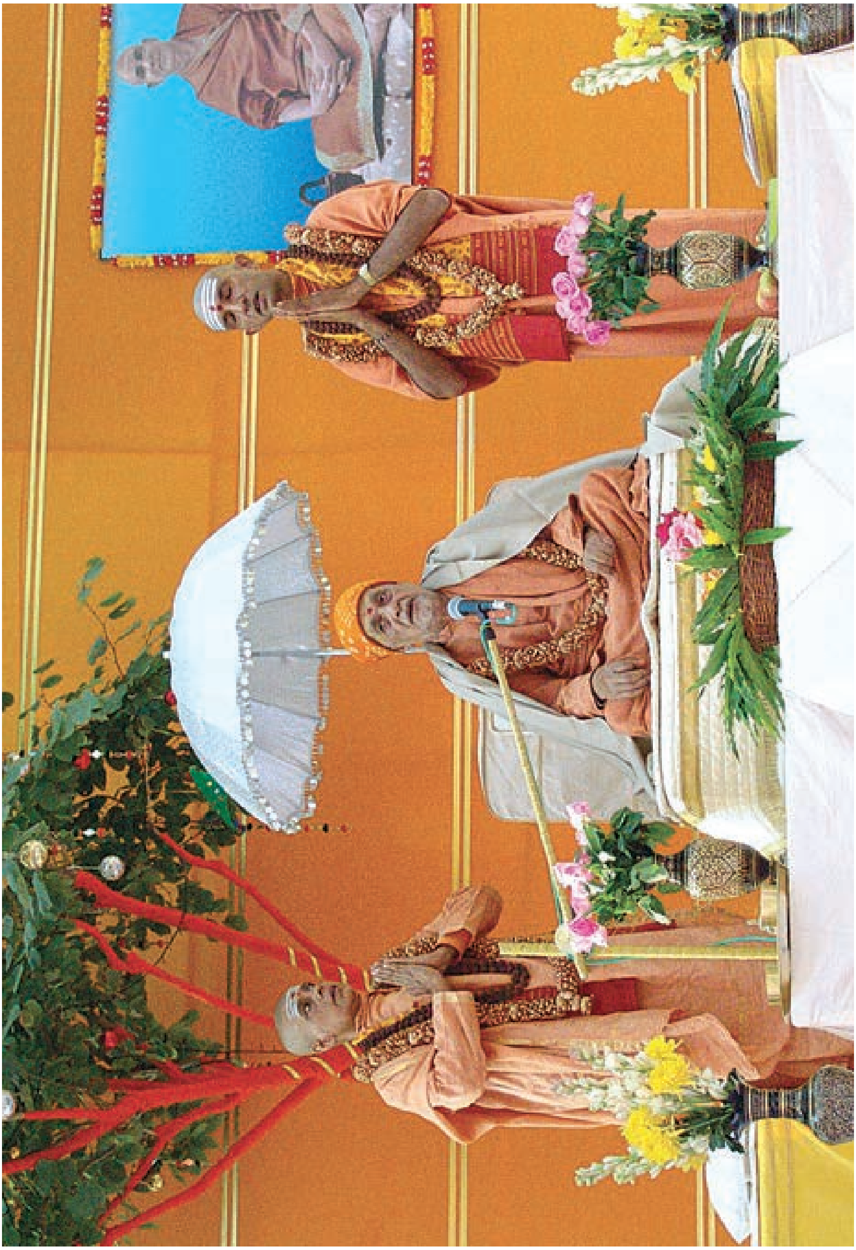

स्वामी श्रद्धानंद जी का आगमन होता है। स्वामीजी छोटे ही थे, नौ-दस की उम्र रही होगी। स्वामी श्रद्धानंद जी के एक कंधे में झोला था और एक हाथ में योगदंड था। गाँव में ही रहकर कुछ समय के लिए विश्राम कर रहे थे। गाँव वालों के साथ रोज उनका भजन-कीर्तन, सत्संग हुआ करता था। स्वामीजी भी अपने परिवार के साथ उनके यहाँ जाते थे, बैठते थे, और योगदंड पर उनकी नजर रहती थी।

एक दिन उन्होंने पूछा, 'यह जादू का डंडा है?' स्वामी श्रद्धानंद जी बोले, 'हाँ बेटा, यह जादू का डंडा है।' 'क्या आप हमको अपना जादू का डंडा दोगे?' श्रद्धानंद जी बोले, 'ले लो' और उन्होंने अपना योगदंड गुरुदेव को दे दिया। साथ ही कहा, 'जादू का डंडा ऐसे काम नहीं करेगा, इसका एक सहयोगी भी है। अकेले यह जादू का डंडा काम नहीं करता है।' तो स्वामीजी ने पूछा, 'जादू के डंडे का सहयोगी कौन है?' कहा, 'यह वस्त्र जादू के डंडे को सहयोग देता है।' तो स्वामीजी ने हाथ बढ़ा दिया, 'हमको भी वस्त्र चाहिए।' तब स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपने कंधे से उत्तरीय उतार कर स्वामीजी को दे दिया, वह भी गेरुआ था। तब स्वामीजी बोले, 'अब तो मैं एक चमत्कारी आदमी बन गया, मेरे पास जादू का डंडा भी है और मेरे पास उसका सहयोगी वस्त्र भी है, अब तो मैं कुछ भी कर सकता हूँ!'

स्वामीजी के जीवन की हर घटना बतलाना तो मेरे लिए संभव नहीं है, लेकिन उनके बाल्यकाल की ये जो घटनाएँ आपको बतला रहा हूँ, वे उनके जीवन के आध्यात्मिक विकास को दर्शाती हैं। पहली घटना थी समाधि का अनुभव, और दूसरी थी योगदंड को लेना। योगदंड कोई हाथी-घोड़ा-पालकी

जैसा खिलौना नहीं है, बल्कि वह तो साधुओं का दंड है। उसे उन्होंने जादुई छड़ी कहकर ले लिया। अब संभवतः अंतरतम में उन्हें ज्ञात था कि एक दिन इसी योगदंड के सहारे मुझे अपने योग को सिद्ध करना है। वस्त्र भी खेल-खेल में उन्होंने ले लिया, जो गेरू अंगोछा था। उसको ओढ़कर और दंड लेकर वे बैठ जाते थे और कहते थे – 'बारिश हो जाय, धूप निकल जाय, बादल आ जाय!' इस प्रकार की बातें वे करते थे।

तंत्र शास्त्र की शिक्षा

जब उनकी उम्र बढ़ती है तो गाँव से वे अल्मोड़ा आते हैं और वहाँ के मिडिल स्कूल में पढ़ाई शुरू करते हैं। अल्मोड़ा में उनके पारिवारिक घर में उनका निवास होता था और छुट्टी मिलने पर गाँव जाकर पूरी जागीर का काम भी संभालते थे। दो-तीन हजार एकड़ जमीन थी, गाय-बकरी-बछड़े जैसे तरह-तरह के जानवर थे, नदी-नाले-गुफाएँ-पर्वत थे। वहाँ पर जाकर यह सारा काम देखते थे, क्योंकि पिताजी की पुलिस नौकरी में स्थानांतरण होते रहता था। इनके तीन भाई और एक बहन थी। माताजी गाँधीवादी कार्यकर्ता थीं, वे सत्याग्रह के लिए बहुत जगह निकल जाती थीं। बहुत बार ऐसा भी हुआ कि माताजी सत्याग्रह पर बैठी हैं और पिताजी आकर उन्हें गिरफ्तार करके जेल ले जाते और फिर रात को छोड़ देते थे कि अब जाओ, घर को संभालो। माता-पिता तो समाज में अपनी-अपनी भूमिका निभाते थे और बड़े होने के नाते स्वामीजी अल्मोड़ा में अपनी पढ़ाई भी करते थे और गाँव जाकर जमीन की देखभाल भी किया करते थे।

एक बार वे अल्मोड़ा से अपने गाँव की ओर जा रहे थे तो रास्ते में देखा कि एक नागा संन्यासिनी पाँच-छह लोगों के साथ बैठकर कुछ बातें कर रही हैं। उन्होंने एक नागा महिला को संभवतः अपने जीवन में पहली बार देखा था, तो कौतूहलवश वे जाकर देखते हैं कि क्या बात हो रही है। महिला जब इनको देखती है तो कहती है, 'ऐ लड़के, जाकर मेरे लिए एक लीटर दूध ले आ।' स्वामीजी बाद में हमलोगों को बतलाते थे, 'मैं तो जमींदार का बेटा था, मैं किसी की आज्ञा को सुनने वाला नहीं था, बल्कि मैं ही सबको आज्ञा देता था कि यह काम करो, वह काम करो, लेकिन जब उसने मुझे कहा और वह भी कर्कश और कठोर स्वर में, प्रेम से नहीं, तो मैं उसकी बात को टाल नहीं पाया। चुपचाप उठा, दूध लेकर आया, उसके सामने रख दिया और फिर

बैठकर सुनने लगा। वह महिला वेद-उपनिषदों की बात कर रही थी, तंत्र की बात कर रही थी, शैव, शाक्त एवं वैष्णव धर्म की बात कर रही थी, चक्रों की बात कर रही थी, प्राणायाम और कुंडलिनी की बात कर रही थी और मैं उसको बड़े ध्यान से सुनते गया।'

इस बीच अल्मोड़ा में पढ़ाई के दौरान उनके भीतर की मेधा प्रकट हो रही थी। बहुत सुंदर कविताएँ लिखते, ऐसी कविताएँ जिन्हें पढ़कर आपके शरीर में रोमांच हो जाए। बहुत प्रेरक लेख लिखते, ऐसे लेख कि पढ़कर खून गरम हो जाता था, सकारात्मक रूप में, नकारात्मक रूप में नहीं। मतलब आनंद की अनुभूति होती थी कि वाह, कितना प्रेरणास्पद, सुंदर और सत्य लिखा है! उस समय उनकी उम्र बारह-तेरह साल की रही होगी। इस बीच सुमित्रानंदन पंत का वहाँ आगमन होता है, जो भारत के एक महान् कवि रहे हैं। जब उन्होंने इस छोटे बालक की कविताओं को देखा तो उनसे भी नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, 'इस बालक में कितनी प्रतिभा है! अगर इस उम्र में इस प्रकार की कविता लिख सकता है, मानव संवेदनाओं को समझ सकता है, उनको इतने सुंदर तरीके से व्यक्त कर सकता है, तो निश्चित रूप से एक दिन यह बालक महान् व्यक्ति बनेगा।' उन्होंने स्वामीजी को लेख, कविता आदि लिखने के लिए प्रेरित किया और स्वामीजी भी उनके प्रोत्साहन से और अधिक लिखने लगे। कहने का तात्पर्य यह कि उनकी प्रतिभा तेरह-चौदह साल के बालक की नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति की थी, जिसने जीवन के सभी पक्षों का अनुभव किया है, जो जीवन के प्रति संवेदनशील है, जो केवल प्रश्न नहीं उठाता, बल्कि उसका समाधान भी देता है।

इस बीच अल्मोड़ा में एक नृत्यशाला भी खुली, जिसका नाम था 'उदयशंकर नृत्य पाठशाला' और स्वामीजी वहाँ जाकर नृत्य सीखने लगे। वह भी भरतनाट्यम जैसा नृत्य। वहाँ नृत्य सीखने के बाद जब 'उदयशंकर नृत्य पाठशाला' का पहला वर्ग एक विशेष समारोह में नृत्य करता है, तो उसकी फिल्मिंग भी हुई और उस फिल्म में आप स्वामीजी को नृत्य करते देख सकते हो। ऐसी प्रतिभाएँ थीं उनकी! आखिर सोलह-सत्रह साल का कौन लड़का कविताएँ और लेख लिख सकता है, दूसरों को प्रेरित कर सकता है, नृत्य कर सकता है, घर का काम संभाल सकता है, अपनी पढ़ाई करके हमेशा अच्छे नंबर ला सकता है? कहने का मतलब बहुप्रतिभा युक्त थे हमारे गुरुदेव। फिर इनकी योगिनी से मुलाकात होती है।

कुछ दिनों के पश्चात् योगिनी का प्रस्थान निश्चित होता है तो स्वामीजी उससे कहते हैं, 'तुम जो सब बातें यहाँ पर कहती हो, क्या मुझे सिखा पाओगी?' योगिनी कहती है, 'हाँ, हम तुमको सिखा सकते हैं, लेकिन हम कुछ नियमों का पालन करते हैं। हम किसी के घर में नहीं रहते, क्योंकि हमारी अपनी साधना और तपस्या रहती है। हम किसी एकांत गुफा में रहते हैं। हमारे लिए भोजन वगैरह की व्यवस्था कर देना और जो समय हम देंगे, उस समय तुम आकर हमसे सीख सकते हो, हम तुमको सिखला देंगे।' स्वामीजी तैयार हो गए। उसे अपने साथ अपने गाँव लेकर आए और अपनी जागीर की एक गुफा में उसके लिए सब तैयार कर दिया। बिछावन, चूल्हा, लकड़ी, अन्न वगैरह, जो व्यवस्था करनी थी सो कर दी। उस योगिनी के बारे में स्वामीजी बतलाते हैं कि उसकी उम्र करीब पैंतालीस साल की रही होगी, वह भैंस जैसी काली, मोटी और भद्दी दिखने वाली थी, लेकिन उसने वेदों और उपनिषदों, योग और तंत्र, चक्रों और कुंडलिनी का ज्ञान दिया और उसका अनुभव भी पूज्य गुरुदेव को हुआ।

हमारे गुरुदेव ने योगदर्शन का कोई भी ग्रंथ नहीं पढ़ा, क्योंकि जिन लोगों ने भी ग्रंथ लिखे हैं, उन सब ने तो अपनी खोपड़ी से लिखा है, अनुभव से नहीं। आज अगर आपको भी कोई ग्रंथ लिखना हो तो दस किताब लेकर बैठोगे

और फिर इधर से कुछ लोगे, उधर से कुछ लोगे, और फिर अपना नाम लिख दोगे। जो भी इस तरह से लिखता है वह बुद्धि का प्रयोग करता है और बुद्धि कभी पूर्ण नहीं होती क्योंकि बुद्धि का जो सबसे बड़ा भाग है – अनुभव, उसके दरवाजे तो बंद हैं। लेकिन इस योगिनी ने जो बात कही, उसका अनुभव पूज्य गुरुदेव को हुआ और इसलिए उनको कुछ पढ़ने की आवश्यकता नहीं हुई। योगिनी की शिक्षाओं का अनुभव होने के बाद वे योगिनी से पूछते हैं, 'क्या आप मेरी गुरु बनेंगी?' योगिनी कहती है, 'नहीं, मेरे को जो बतलाना था, मैंने तुमको बतला दिया। अब और आगे जाने के लिए तुम गुरु की खोज करो', और ऐसा कहकर वह फिर वहाँ से प्रस्थान कर जाती है।

गुरु की खोज

समाधि का अनुभव, योगियों के साथ मिलन, योगदंड की प्राप्ति और साधना की शिक्षाएँ एवं उनका अनुभव – यह सब हो गया अठारह-उन्नीस साल तक। यह क्रम क्या बतलाता है? क्या यह एक सामान्य जीवन के क्रम को दर्शाता है या फिर जो भी घटनाएँ घटीं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है मानो एक नया दरवाजा उनके लिए खुल गया और वे उसमें प्रवेश कर गए, फिर दूसरा दरवाजा खुला, वे प्रवेश कर गए। ये घटनाएँ एक यात्रा को दर्शाती हैं, एक के बाद एक दरवाजे खुलते चले गए और व्यक्ति उस मार्ग पर बढ़ते चला गया। जब योगिनी ने कहा, 'तुम इस मार्ग में आगे बढ़ने के लिए गुरु की खोज करो', तो स्वामीजी ने भी मन-ही-मन सोचा कि अब हम तैयार हैं, हमें गुरु की खोज करनी चाहिए। यह बात वे अपने पिताजी से कहते हैं। उस समय उनकी उम्र लगभग उन्नीस की रही होगी। पिताजी भी ऐसे कि जवाब में कहते हैं, 'यह बात तुमने मुझसे कही और चूँकि तुमने निर्णय ले लिया है, तुमने विचार कर लिया है, मैं तुमको स्वीकृति देता हूँ।' कौन माँ-बाप अपने बच्चे से कहेगा कि तुमने संन्यास का निर्णय ले लिया है, मैं तुमको अनुमति देता हूँ? आज तक हमने किसी को ऐसा कहते नहीं सुना।

पिताजी कहते हैं, 'तुमने सोच लिया है, निर्णय ले लिया है, इसलिए मैं तुमको अनुमति देता हूँ। बस, अपनी माँ को यह बात नहीं बोलना कि तुम घर छोड़ना चाहते हो, क्योंकि माँ भावना के वश में आकर तुम्हें रोकेगी और मैं नहीं चाहता कि भावना के वश में तुम अपने विचारों को या मार्ग को या उद्देश्य को बदल दो।' वे खुद स्वामीजी को अल्मोड़ा के बस-स्टैंड तक ले

गए, टिकट खरीद दिया और जब स्वामीजी बस पर सवार हो रहे थे तो एक अंतिम वाक्य कहा, 'बेटा, तुम जा रहे हो एक अज्ञात पथ पर, अब वापस नहीं आना और वापस मुड़कर भी नहीं देखना कि एक समय मेरा घर-परिवार था, एक समय हम ऐसे थे। नहीं, वह सब नहीं। जब पुराना छोड़ रहे हो, एक नयी यात्रा पर जा रहे हो तो पुराने की याद बिल्कुल नहीं करना, हमेशा आगे देखते रहना, पीछे मुड़कर नहीं देखना।'

हमारे गुरुदेव ने अनेक बार कहा है कि 'मैंने घर छोड़ा, कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा कि क्या छोड़ा हूँ। मैंने अपने गुरुजी का आश्रम छोड़ा, फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा कि क्या छोड़ा हूँ। मैंने मुंगेर छोड़ा, पीछे मुड़कर नहीं देखा कि मैंने क्या छोड़ा। मैं शरीर को भी छोड़ूँगा तो पीछे मुड़कर नहीं देखूँगा कि मैंने क्या छोड़ा है।' उनके पिता का यह वाक्य – 'पीछे मुड़कर कभी नहीं देखना' उनके जीवन का सिद्धांत बन गया। वे चले थे अकेले, कारवाँ बढ़ता गया, लेकिन पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा कि कितना लंबा कारवाँ है। 'आज भी मैं अकेले ही चल रहा हूँ। मेरे सामने कोई नहीं है, पीछे भीड़ लगी है, लेकिन मैं तो उधर देख ही नहीं रहा हूँ,' यही उनका सिद्धांत रहा।

पिताजी के इस अंतिम आशीर्वाद के साथ वे मुक्तेश्वर आते हैं जहाँ एक प्राचीन शिवालय है। वहाँ जाकर वे अपना माथा टेकते हैं और कहते हैं, 'हे प्रभु! गुरु की खोज में जा रहा हूँ, मेरी सहायता करना।' उसके पश्चात् लगभग छह-सात महीने हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के क्षेत्रों का दौरा करते हैं। विभिन्न साधुओं की संगति में जाते हैं, विभिन्न आश्रमों में उनका प्रवास होता है। जब वे राजस्थान में थे, तो जिस आश्रम में वे रहते थे, उसके प्रधान बूढ़े हो गए थे और स्वामीजी की प्रतिभा को देखकर उन्हें लगा कि मुझे मेरा सुयोग्य उत्तराधिकारी मिल गया है। उन्होंने अपने मत को स्पष्ट भी कर दिया कि 'मैं इस युवक को अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा।' तारीख वगैरह सब तय हो गयी, तैयारियाँ भी हो गयीं। स्वामीजी को पहले मालूम नहीं था, लेकिन जिस दिन उन्हें मालूम पड़ा कि इन महात्मा ने मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय ले लिया है, समय और तिथि तय हो गयी है, तो उन्होंने सोचा, 'मैं किसी का उत्तराधिकारी बनने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ' और उसी रात को दीवार फाँदकर चले गए!

उस आश्रम से निकलकर स्वामीजी दिल्ली आते हैं। दिल्ली में ट्रेन पर चढ़े, सोचा कि 'हम जाते हैं हरिद्वार-ऋषिकेश तरफ, हो सकता है उस तरफ

कोई अच्छा साधु, संत, संन्यासी मिल जाए जो हमारा गुरु बन सके।' उस ट्रेन में उनकी मुलाकात एक जवान पोस्टमास्टर से होती है जो सहारनपुर में कार्यरत थे। पोस्टमास्टर इनसे पूछते हैं, 'कहाँ जा रहे हो?' स्वामीजी कहते हैं, 'सोच रहा हूँ कि हरिद्वार-ऋषिकेश तरफ जाकर गुरु की खोज करूँ।' पोस्टमास्टर कहते हैं, 'देखो, हरिद्वार-ऋषिकेश में तुम्हें बहुत साधु, महात्मा, संन्यासी मिलेंगे, लेकिन सच्चे गुरु केवल एक हैं और वे हैं स्वामी शिवानंद। तुम और कहीं मत जाओ, सीधा उनके पास जाओ।'

देखिये, क्या संयोग रहा! जब गुरु-मिलन की बारी आयी तो एक और दरवाजा अपने आप खुल गया। उस पोस्टमास्टर ने यह नहीं कहा कि तुम यहाँ भी जाओ, वहाँ भी जाओ। नहीं, उसने केवल कहा कि स्टेशन से उतरकर तुम सीधा स्वामी शिवानंद जी के पास जाना। किसी और के पास जाने की जरूरत नहीं, क्योंकि वही सच्चे गुरु हैं। ये पोस्टमास्टर, जो उस समय बीस-बाईस साल के जवान रहे होंगे, बाद में गुरुदेव से संन्यास दीक्षा लेकर पटना में पहले 'सत्यानंद योग केंद्र' की स्थापना करते हैं।

मैंने जो घटनाएँ बतलायीं, उनसे यह पता चलता है कि श्री स्वामीजी के आध्यात्मिक जीवन के द्वार किस प्रकार बचपन से खुलते चले गये। वे तो पूर्वजन्म के संस्कारों को लेकर आए थे और संस्कारों के दरवाजे खुलते गए, खुलते गए। एक अनजान व्यक्ति ने उनसे कहा कि 'सच्चे गुरु स्वामी शिवानंद हैं, तुम जाओ उन्हीं के पास।' यह उनकी प्रारम्भिक जीवन यात्रा का क्रम रहा। उनके पूर्वाश्रम की यात्रा एक सामान्य, सामाजिक यात्रा नहीं रही, बल्कि एक जीवंत, आध्यात्मिक यात्रा रही।

जब वे शिवानंद आश्रम पहुँचे तो वे बीस वर्ष के थे। इसके साथ उनके जीवन का पहला अध्याय भी समाप्त हुआ। स्वामी शिवानंद जी ने स्वामीजी से कहा था कि तुम्हारे जीवन के चार अध्याय हैं – पहला अध्याय बीस वर्षों का जिसमें तुम अपने घर-परिवार में रहे, दूसरा अध्याय बीस वर्षों का गुरु के साथ, तीसरा अध्याय गुरु के मिशन के लिए और चौथा अध्याय ब्रह्माण्डीय कार्य के लिए। इस प्रकार बीस-बीस सालों के चार अध्यायों का वर्णन स्वामी शिवानंद जी ने किया। यह एक सामान्य व्यक्ति की जीवन-यात्रा नहीं है, बल्कि एक ऐसे अवतारी पुरुष की जीवन-यात्रा है, जिसने अपने गुरु के लिए स्वयं को समर्पित किया और उनकी शिक्षाओं को विश्व में प्रसारित किया।

– 28 अगस्त 2024, पादुका दर्शन

भक्ति और समर्पण

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

यदि मनुष्य में प्रभु के लिए दिव्य प्रेम का अभाव है, तो उसकी चेतना किसी भी प्रकार से साधना में लीन नहीं होगी। इसलिए सर्वप्रथम तुम्हें उसके प्रति प्रेम बढ़ाना चाहिए। दिव्य प्रेम का अनुभव केवल ईश्वर के अनुग्रह तथा संतों के आशीर्वाद से होता है।

असतो मा सद्गमय – असत्य से मुझे सत्य की ओर ले चलो

यदि तुम्हारी पत्नी को कुछ हो जाए तो तुम्हारे मन की क्या अवस्था हो जाएगी? उदाहरणार्थ, यदि वह शहर में कहीं जाती है और बहुत रात हो जाने पर भी नहीं लौटती तो तुम्हारी मानसिक दशा कैसी होगी? मान लो, तुम दोनों झगड़ पड़ते हो, और वह अपने पिता के घर चली जाती है, तो तुम्हें जरूर इस घटना से कुछ अनुभूति होगी। वह अनुभूति किस प्रकार की होगी, यह दूसरी बात है।

इस अनुभूति के पीछे कारण क्या है? केवल राग, और कुछ नहीं। जितना ही अधिक प्रेम होगा, उतनी ही उसकी स्मृति या चेतना होगी तथा तीव्र अनुभूति भी। अब तुम समझ रहे होगे कि तुम्हारा इष्ट देवता के प्रति इतने

मन्द प्रेम का रहस्य क्या है? तुमने अभी उसके लिए इतना प्रेम नहीं बढ़ाया है, जितना तुम्हें स्त्री और धन के लिए है। धर्म-साधना, गुरु-मन्त्र और ईश्वर को गाली देने से कुछ नहीं होगा, जब तक तुमने उसके साथ मिलने की अति तीव्र इच्छा का विकास नहीं किया है।

तुम्हारा मन घड़ी के पेण्डुलम की भाँति इधर-उधर क्यों डोलता रहता है? मन इसके लिए दोषी नहीं, यह तुम्हारा ही दोष है, क्योंकि तुम बिना भाव और हृदय के साधना करते हो। क्या तुमने कभी अपनी बिखरी हुई भावनाओं को बटोरकर प्रभु की ओर बहाने का प्रयत्न किया? अरे, वही तो उन्हें आत्मसात् कर सकता है। लगता है कि तुम्हें दो-चार चाबुक की आवश्यकता है।

एक महिला है जो पिछले पच्चीस वर्षों से केवल फल और दूध पर रह रही है। उसका आध्यात्मिक स्तर इस समय क्या है? वही जहाँ से उसने पच्चीस साल पूर्व चलना प्रारम्भ किया था। वह अब भी क्रोध, लोभ, चुगली, निन्दा, प्रतिहिंसा, मलिनता, अहंकार और काम की दासी है। क्या तुम कह सकते हो कि उसने सिर्फ फल और दूध पर पच्चीस वर्षों तक रहकर कुछ प्रत्यक्ष लाभ उठाया है? नहीं, यह रास्ता नहीं है। बूढ़ी औरतों के ऐसे धर्म के चक्कर में मत पड़ो।

जब तक तुम्हारा मन एक केन्द्र में लय नहीं होता, और जब तक वह उसके लिए अत्यधिक भावनाशील नहीं बनता, कितना ही व्रत, तीर्थयात्रा, शास्त्र-अध्ययन और पूजा-पाठ क्यों न किया जाए, लेकिन दैवी अनुभूति नहीं होगी। जब वह महिला प्रभु के दर्शनार्थ मेरे पास आई तो मैंने उसे बिल्कुल दूसरे तरीके से राय दी। मैंने उसे निर्देश दिया, 'तोड़ो और जोड़ो', अर्थात् वैराग्य और अभ्यास। इसका तात्पर्य क्या है? मान लो जल की धारा बह रही है। तुम उससे अपना खेत सींचना चाहते हो। तुम्हें उस प्रवाह को काटकर अपने खेत की ओर सींचने के लिए ले जाना पड़ेगा। इसलिए पहले तुम्हें उस धारा को मोड़ना, उसे अपने मूल प्रवाह से अलग करना पड़ेगा। पुनः उसको एक नाली के जरिए अपने खेत से जोड़ना पड़ेगा। इसी प्रकार तुम्हें सांसारिक वस्तुओं से अपने राग को अलग करना पड़ेगा। पुनः उसी राग को ईश्वर-स्मरण में लगा दो। मन की निम्न सुखों और वस्तुओं की ओर जो प्रवृत्ति है, जब भी वह केन्द्र से अलग हो, उसे बार-बार लौटाकर पुनः प्रत्येक बार केन्द्र पर ला धरना चाहिए। विचार-प्रवाह को, जिसकी प्राकृतिक रूप से दो प्रवृत्तियाँ हैं, आकर्षण और विकर्षण, अर्थात् राग और द्वेष, उधर से लौटाकर अनासक्ति रूपी राजपथ के द्वारा अनन्त की ओर जाना होगा।

भक्ति दिव्य उपहार है, जो प्रभु की कृपा से प्राप्त होती है। दुर्भाग्यवश हमलोगों ने इस दिव्य-सम्पत्ति का अपनी सांसारिक इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और फैशन आदि वासनाओं की पूर्ति के लिए दुरुपयोग किया है। ईश्वर का वरदान जो प्रेम है, वह स्त्री, बच्चों, धन, सगे-सम्बन्धी, नाम और यश आदि में ही व्यय हो रहा है। इस प्रकार मनुष्य ब्याज-सहित मूलधन को भी खो रहा है। उसके पास केवल रिज़र्व बैंक के नोटों के बण्डल भर बच जाते हैं, जिसे वह केदारनाथ में पूजा के समय प्रभु को समर्पित करता है। इसलिए उसे अपने सांसारिक वस्तुओं के प्रेम को अलग कर अनन्त प्रभु की ओर मोड़ना चाहिए। अब तुम समझ गए होगे कि तोड़ने और जोड़ने से मेरा क्या तात्पर्य है।

उपवास करने से कोई लाभ नहीं, यदि तुम्हारा मन बुरी भावनाओं की ओर तेजी से भागता है। यदि तुम अच्छी तरह खाओ और पीओ, साथ-साथ पवित्र और शान्तिमय आन्तरिक जीवन भी व्यतीत करो तो क्या हानि है। एक मांसाहारी मित्र जो मन और कर्म से परोपकारी है तथा जिसके रोम-रोम में त्याग की भावना है, उस शाकाहारी और मनमौजी पण्डित से लाख दर्जे अच्छा है, जो काला-बाजारी, मिलावट, शोषण तथा समाज विरोधी कार्य करता है। एक श्रेष्ठ किन्तु अनेक बुराइयों से युक्त आदमी बनने की अपेक्षा सुन्दर गुणों से युक्त सरल आदमी बनना कहीं अच्छा है। तत्पश्चात् हरिभक्त बनो, सबके मित्र, सबके बन्धु और अपने स्वामी।

तमसो मा ज्योतिर्गमय – अन्धकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो!

मुझे भगवान का एक उपदेश याद रहा है जहाँ वे अपने प्यारे शिष्य, अर्जुन से कहते हैं, 'अविद्या की सभी धारणाओं को त्याग कर तुम अकेले केवल मेरी शरण में आओ। मैं सब पापों से तुम्हें मुक्त कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो।' नोट करो, 'अकेले शरण में आओ।'

यहाँ भगवान कहते हैं कि सारे बोझ उनके चरणों पर डाल दो। हाँ, उनका तात्पर्य पूर्ण समर्पण से है, जहाँ हम परिस्थितियों से बाध्य होकर नहीं, बल्कि स्वेच्छा से हाथ जोड़कर, शीश झुका कर अहं को समर्पित कर तथा हृदय को दिव्य बनाकर उनके चरणों में जाते हैं। जब तक पत्नी पति के समक्ष पूर्ण समर्पण नहीं करती, तब तक वह पति की निकटता उतनी नहीं पा सकती, जितने की वह कामना करती है। जब वह पूर्ण समर्पण कर देती है, तभी वह पति पर, साथ-साथ उसकी सभी वस्तुओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करती है। इस अधिकार-प्राप्ति का

रहस्य पूर्ण समर्पण, अर्थात् देने में छिपा हुआ है – क्षणिक मूल्य वाली वस्तु का पूर्ण मूल्य की वस्तु के लिए त्याग। हाँ, जब तुम अपने आपको दे देते हो तो केवल 'उसको' नहीं पाते, बल्कि अपने आप को भी पुनः प्राप्त करते हो।

सागर कहता है सरिता से, 'प्रिये, यदि तुम मेरे साथ एक होना चाहती हो तो तुम्हें अपने आपको मुझमें लय करके अपने व्यक्तित्व को खोना पड़ेगा।' इसी प्रकार यदि तुम ईश्वर को पाना चाहते हो, तो तुम्हें अपने सारे ध्यान को, जिसे तुमने दुनिया को दे रखा है, लौटाकर अपने इष्ट देव पर लगाना होगा। जैसे ही तुम्हारा ध्यान उसकी ओर लगा तो समझो कि ध्यानयोग प्रारम्भ हो गया है। शैतान को धन दे दो, किन्तु प्रेम और चिन्तन को भगवान के लिए बचाकर रखो। उसे तुम्हारे कंचन, केले और कलाकन्द की भूख नहीं। वह अनन्त विश्वमण्डल को कब से पोसता आ रहा है! एक भेंट तुम चढ़ा सकते हो, वह है ध्यान और प्रेम। जब तक तुम भागते हुए छायामण्डल तथा नाश

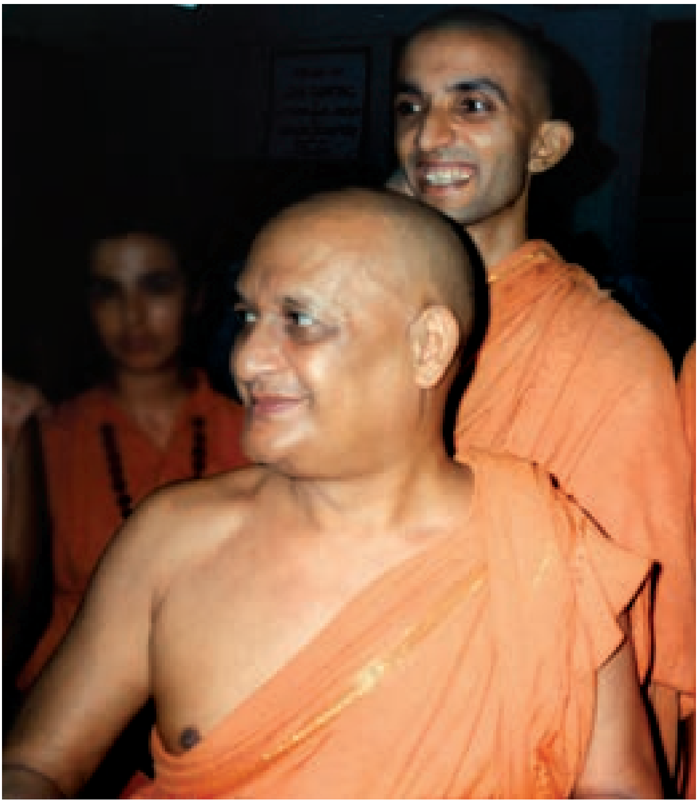

हो जाने वाले सौन्दर्य की ओर से अपनी दृष्टि नहीं फेरोगे, तब तक तुम पाप और सन्ताप से मुक्ति नहीं पा सकोगे। जब तक तुम सांसारिक सुखों और गम्भीर विषयासक्ति की ओर से अपनी नजर फेरोगे नहीं, तब तक तुम कैसे शान्त और सुखी हो सकते हो? अपनी आत्मा का हनन कर तुम सर्वोत्तम की प्राप्ति करोगे तो कैसे?

तुम दिल्ली जाने वाली ट्रेन में बैठे हुए यात्री हो। तुम्हारे रास्ते में बहुतेरे स्टेशन आएँगे जरूर, किन्तु तुम्हें इनमें से किसी पर भी उतरना नहीं चाहिए। यह याद रखो कि तुम्हें दिल्ली जाना है, और कहीं नहीं। जो कर्तव्य तुम अपनी स्त्री और बच्चे के लिए कर रहे हो, वही तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। तब भी तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इन सब स्टेशनों से होकर ही जाना होगा। तुम्हें अपनी आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ उन सब कर्तव्यों को करते जाना है। यदि तुम रास्ते के किसी स्टेशन को अपनी अन्तिम मंजिल मानकर उतर पड़ोगे तो तुम प्लेटफार्म पर बिल्कुल अनजान और निराश्रित हो जाओगे। जीव को परम लक्ष्य की ओर ले आने के लिए 'प्रवृत्ति मार्ग' उसका रास्ता है। 'निवृत्ति' है अन्दर की एक भावना, लक्ष्य का सतत् स्मरण मोक्ष है। तुम अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ण सुधि रखते हुए जीवन-पथ पर आगे बढ़ते चलो।

काम तुम्हें अवश्य करना है, क्योंकि दूसरा रास्ता नहीं। जीवन सार्थक करने के साथ-साथ परिवार के पोषण के लिए कार्य करना ही है। यह निसेनी का पहला चरण है। जैसे ही पैर अगले डण्डे पर बैठा, वैसे ही साधक को पिछला पैर उठाकर उसे अगले डण्डे पर रखना पड़ता है। इसलिए प्रेम और समर्पण ही मार्ग है। अब तुम प्रभु पर ध्यान शुरू कर सकते हो। यह भक्तियोग हुआ। प्रेम और समर्पण के द्वारा उससे ऐक्य स्थापित करने के लिए भक्तियोग ही रास्ता है।

साधक को उसे उतने ही प्यार से पुकारना चाहिए, जितने प्यार से पत्नी अपने पति या बच्चे को पुकारती है। प्रभु को उसी प्रकार याद करना चाहिए, जैसे कोई स्त्री अपने उस अमूल्य सोने के हार को याद करती है जिसे उसके पति ने सुहागरात के दिन उसे उपहार में दिया था और जो चन्द मिनट पहले ही चोरी हो गया हो। मनुष्य को ईश्वर के लिए हृदय में वैसी ही तीव्र इच्छा होनी चाहिए, जैसी कि एक स्त्री को, जिसके पति ने विदेश से उसके लिए नाइलॉन की साड़ी भेजी हो और वह उसे अपनी सहेलियों को दिखाने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो।

न मन्दिरों में, न घण्टी बजाने से, न शंख फूँकने से, न आरती उतारने से और न ताली बजाने से ही कोई उसे देख सकता है। जो साधक गतिशील और रचनात्मक प्रकृति के प्रेम को अपने हृदय में धारण करता और उसका पोषण करता है, वही ईश्वर को अन्दर और बाहर देख लेता है।

मृत्योर्माऽमृतं गमय – मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो!

समर्पण का अगला कदम लो, उसके बाद मैं समझता हूँ कि तुम्हारे अधिकांश सन्देह दूर हो जाएँगे। मकान की मरम्मत के लिए तुम क्यों परेशान हो जब मकान-मालिक उसके लिए तैयार बैठा है? यह उसका मन्दिर है। वह जैसा चाहे, उसे करने दो। समर्पण के साथ-साथ यह भावना होनी आवश्यक है।

इसी प्रकार तुम्हें यह भी याद रखना चाहिए कि केवल यह शरीर नहीं, बल्कि तुम्हारी पत्नी, रिश्तेदार तथा धन भी उसके दिए उपहार हैं। एक क्षण के लिए भी यह न भूलो कि केवल वही तुम्हारी सारी जरूरतों को पूरी कर रहा है। इस तरह की भावना से न केवल चिन्ता और भय दूर होंगे, इससे अपूर्व आत्मिक शक्ति भी प्राप्त होगी।

अनिद्रा, सरदर्द, रक्तचाप और इसी प्रकार की अन्य बीमारियाँ हमें क्यों होती हैं? क्या इसका कारण यह नहीं कि पूर्ण आत्म-समर्पण के आवश्यक गुणों का हममें अभाव है? मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसा नियम या भाव जरूर है, जिसका पालन कर हम मानसिक रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इसे तुम अनासक्ति कह सकते हो। मैं इसे आत्म-समर्पण कहता हूँ। कुछ भी हो, दोनों एक ही वस्तु हैं।

समर्पण की कला भी एक गुण है। वह हमेशा पूर्ण होना चाहिए। शत-प्रतिशत होना चाहिए। मरे मन से समर्पण समर्पण नहीं है। जबानी समर्पण समर्पण नहीं है। प्रेम से किया हुआ समर्पण ही वास्तविक और स्थायी होता है।

भाव सुमन

मधु रुंगटा, मुंगेर

यह हमारा परम सौभाग्य था कि हमें मुंगेरवासी बनने का मौका मिला। रहने को एक अच्छा घर तो मिला ही, साथ ही एक पर एक घर बिल्कुल मुफ़्त मिला! साथ ही एक विशाल प्रांगण भी मिल गया। दूसरा घर था गंगा दर्शन, परम सुरम्य, शांति का आगार और सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर।

प्रथम झलक में ही मैत्री हो गई। मन यहीं रमने लगा। सभी उत्सव, पर्व, अनुष्ठान में आना-जाना होता रहा। अनायास ही आते-जाते बहुत कुछ सीखने का मौका मिला। स्वावलंबन, अनुशासन, अध्यात्म, योग, और सबसे बढ़कर गुरु भक्ति योग। गुरु के प्रति शत-प्रतिशत समर्पण की भावना। श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती और स्वामी निरंजनानंद सरस्वती – इस युग में एसी गुरु-शिष्य परम्परा विरले ही देखने को मिलती है।

परमहंसजी का शताब्दी वर्ष समारोह चल रहा है। एक शिष्य गुरु के चरण-कमलों की सेवा में रत रहकर, किस प्रकार गुरु से गुरुतर हो जाता है, हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। नित्य ही भजन, कीर्तन, हवन, मंत्र साधना, रामचरितमानस, शबद कीर्तन, भागवत कथा, दान, पुण्य, धर्म जैसे सारी आध्यात्मिक शक्तियों में होड़-सी लगी है अपनी-अपनी सहभागिता के लिए। सारे अनुष्ठान सौम्यतापूर्वक सम्पन्न हो रहे हैं।

हमारे मन की गिलहरी ने भी हलचल शुरू कर दी। दौड़कर एक चुटकी रेत ले आई और झिझकते हुए गुरु के चरणों में अर्पित कर दी। जय हो !

मंगलाचरण

नमन करूँ कर जोड़ कर, गणपति का धर ध्यान।
पुष्प चढ़ाऊँ शारदे, रखना मेरा मान॥
भाव सुमन अर्पित करुँ, हृदय भरा सम्मान।
गुरु की महिमा का सकल, सुर-मुनि करते ध्यान॥
शक्तिपीठ माँ चण्डिका, देवी करूँ प्रणाम।
दानवीरता कर्ण की, स्वर्ण सवा मन दान॥
गंगा उत्तरवाहिनी, बहती मुद्गल धाम।
गुरुवर सत्यानंद का, अखिल विश्व में नाम॥
ख्याति नगर मुंगेर की, कैसे करूँ बखान।
परिव्राजक के वेश में, आए गुरु महान॥
नमन सत्यानंद गुरु, महिमा बड़ी अपार।
ज्ञान बाँटते योग का, जाने सब संसार॥
पावन अल्मोड़ा नगर, जन्मे सत्यानंद।
अद्भुत प्रतिभा के धनी, प्रज्ञा मिली अनंत॥
बीस वर्ष की आयु में, छोड़ दिया घर बार।
अन्वेषण को चल पड़े, हिम्मत ही आधार॥
सुखमन गुरु थी योगिनी, पाई शिक्षा तंत्र।
शिवानंद सा गुरु मिला, दिया प्रेम का मंत्र॥
कर्म भूमि मुंगेर है, योग नगर शुभ नाम।
गुरु की आज्ञा से यहाँ, बना योग का धाम॥
गंगादर्शन तीर्थ है, दूर देश के लोग।
हल होते सब कष्ट हैं, तन-मन बने निरोग॥
जलता दीप अखंड है, निशदिन आठों याम।
दर्शन करने मात्र से, होते चारों धाम॥

1. चौपाई – चमक रहा नभ नाम तुम्हारा, योगी सत्यम् सब से न्यारा।
योग सफल जीवन आधारा, किया समर्पित जीवन सारा॥

पूर्ण हुई गुरु खोज है, आते जब ऋषिकेश।
जीवन अर्पण कर दिया, अपना सारा शेष॥
कर्म योग की साधना, लेकर आश्रम भार।
समझा जीवन मर्म तब, यही है जीवन सार॥

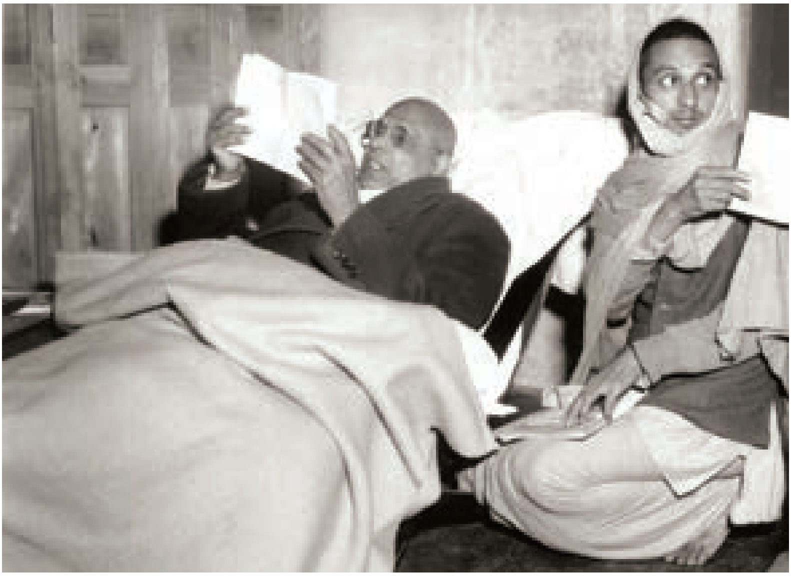

लगन मेहनत देखकर, उमड़ा गुरु को प्यार।
देकर स्नेह अपूर्व तब, भरा ज्ञान भंडार॥
होता गुरु बिन ज्ञान क्या, पारस गुरु समान।
बनता लोहा स्वर्ण है, शिष्य गुरु सम जान॥
योग सिखाया दस मिनट, किया शक्ति का पात।
प्रहर चौबीस काम ही, करें न दूजी बात॥
विगलित अहं सकल हुआ, दिनभर करते काम।
क्षण क्षण जीवन महत्त्व है, देते नहीं विराम॥
भ्रमण करो अब विश्व में, ज्योत जलाओ तात।
गुरु की आज्ञा मान ली, तनिक नहीं संताप॥
गुरु आज्ञा सर्वोपरि, क्यों हो तनिक विचार।
किया स्वयं स्वीकार है, अनुग्रह प्रभु अपार॥

2. चौपाई – आज्ञा मानी आश्रम छोड़ा, रास्ता अपना फिर है मोड़ा।
भटक रहे हैं सत्यम् स्वामी, त्र्यम्बकेश्वर अंतर्यामी॥
मिला इष्ट आदेश तब, पहुँचे नगर मुंगेर।
मुख पर आभा ओज है, ज्ञानी एक कुबेर॥
अब शरीर को त्याग कर, गुरुवर पहुँचे धाम।

शिवानंद गुरु आपको, कोटि-कोटि प्रणाम॥
दर्शन देकर शिष्य को, देते आशीर्वाद।
गंगाजल छींटे पड़े, किया मौन संवाद॥
ईश कृपा से प्रेरणा, जाओ देश-विदेश।
योग पताका अब फहरे, रुको नहीं तुम लेश॥
विविध लोग से मिल रहे, देते हैं व्याख्यान।
संग सचिव थी साथ में, पश्चिम भरी उड़ान॥
सिंगापुर ऑस्ट्रेलिया, फिलिपीन्स जापान।
होनोलूलू अमरीका, आखिर में ईरान॥
योग मान अब खूब हो, नित नूतन अन्वेष।
मनोवैज्ञानिक तथ्य यह, होगा भला अशेष॥
पूर्व पश्चिम धारणा, दोनों का कर मेल।
घिसी-पिटी जो मान्यता, क्यों कर मानव झेल॥

3. चौपाई – सत्यम् सलिला बहे पावनी, गंगा धारा लगे भावनी।
कलकल-कलकल बहती जाती, जो डूबो तो पार लगाती॥

आश्रम बना विशाल है, गंगा दर्शन धाम।
योगी सत्यानंद का, अखिल विश्व में नाम॥
जीवन शैली स्वच्छ हो, विविध तरह के योग।
अंतस मन की चेतना, दूर भगाती भोग॥
भेद-भाव रखते नहीं, कार्य नहीं है हेय।
शैली निद्रा योग की, सत्यम् को है श्रेय॥
गंगादर्शन छाँव में, पँछी देश विदेश।
विविध योग की साधना, करते क्रिया विशेष॥
बाल मित्र की मंडली, कैसी ऊर्जावान्।
वरद हस्त गुरु का मिला, आश्रम की है जान॥
सृजन साहित्य हो नवल, फैले ज्ञान प्रकाश।
रचे शताधिक काव्य हैं, मर्म भरे हैं खास॥
वैदिक संस्कृति साथ में, यज्ञ हवन हो रोज।
दूर देश के नागरिक, आते आश्रम खोज॥
योग और अध्यात्म का, बाँटा खूब प्रसाद।
अनुयायी चहुँ और हैं, भागा दूर विषाद॥

4. चौपाई – नगरी-नगरी तीरे-तीरे, योग बढ़ा है धीरे-धीरे।
जग में ऊँचा नाम किया है, अमृत कलश घट दान किया है॥
स्मरण सत्यम् को हुआ, दिया वचन था एक।
बीस वर्ष पश्चात् फिर, करने काम अनेक॥
सक्रिय जीवन आठ से, जीया साल पचास।
हुआ पुन: आदेश है, करना रिखिया वास॥
माह सितम्बर को हृदय, अंतर उठी आवाज।
दृश्य चिताभूमौ दिखा, पिछड़ा एक समाज॥
लिंग कामनापूर्ति है, शिव बैद्यनाथ स्थान।
जाग्रत देवी पीठ है, सकल विश्व में मान॥
करें पंचाग्नि साधना, जटिल बड़ा है काज।
संत रहें एकांत में, भस्म का करते साज॥
परम शांत स्थान है, जप-तप में हैं मस्त।
तुलसी देवी इष्ट हैं, पुरश्चरण में व्यस्त॥
मांगा तुलसी मात से, रखना इतना ध्यान।
रामनाम ही मुख रहे, निकलेगी जब जान॥
बनी कमाई त्याग बल, पावन यह संदेश।
सेवा प्रेम की भावना, नर कर सही निवेश॥

5. चौपाई – मंत्र जाप शिव खूब किया है, दुख पीड़ित का आप लिया है।
देख जगत यह कहाँ खड़ा है, अंध कूप में व्यर्थ पड़ा है॥
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
योगीश्वर का मंत्र है, कण-कण में भगवान॥
जीवन परहित सौंपते, निर्धन को दें दान।
सक्रिय रहें समाज में, होते संत महान॥
माताओं को उपकरण, कृषक मिले औजार।
पाती नववधु बेटियाँ, साड़ी गहने हार॥
रखना ध्यान समाज का, करो पड़ोसी प्यार।
सबके हित की सोचना, जीवन के दिन चार॥
आत्मा करती गुरु सदा, अंतर शिष्य निवास।
करे समर्पण शिष्य जो, गहरा हो विश्वास॥
क्षत्रिय वंशी आप हैं, कुल इक्ष्वाकु महान।
पूर्वज दशरथ आपके, अंश राम भगवान॥
द्वापर के ही कर्ण थे, स्वामी सत्यानंद।
रिखिया सुखिया बन गई, घर-घर में आनंद॥

6. चौपाई – सकल शक्तियाँ हृदय समाहित, सत्य राह चल करते परहित।
विधि बताते पाप नाश की, रस्सी टूटे मोह फास की॥
मिला ब्लैंक जो चेक है, लक्ष्मी का वरदान।
जितना चाहो तुम भरो, कर लो कार्य महान॥
कैसे माने संत का, नहीं कोई घर-बार।
सकल जगत अपना लगे, हृदय में रखते धार॥
तपकर गुरु पंचाग्नि में, बन गये खालिस स्वर्ण।
परम हंस की साधना, रहते कुटिया पर्ण॥
राजसूय को पूर्ण कर, जय सीता कल्याण।
भक्ति धारा बह रही, राम नाम का गान॥
कर्म भूमि मुंगेर है, अद्भुत है संस्थान।
तपस्थली रिखिया बनी, सेवा प्रेम औ दान॥
किया स्वयं स्वीकार है, लिये स्वप्न आकार।
सपने पूरे हो चुके, त्यागूँगा संसार॥
मिले टिकट जो वापसी, तब मैं त्यागूँ प्राण।

मोक्ष नहीं प्रभु चाहिए, सत्य करूँ संधान॥
दिग्विजयी बनकर बढ़े, अविरल हैं गतिमान।
जगत हृदय पर राजकर, शिष्यों के अभिमान॥

7. चौपाई – करे भलाई नर जो हरदम, मधुर गीत सा जीवन सरगम।
सर्व सुलभ निज पंथ बनाया, जीवन अनुभव सार बताया॥
चिंतक वे उन्मुक्त थे, बढ़े रूढ़ियाँ तोड़।
संत निराला हिंद का, क्या है उनका जोड़॥
त्यागा जग योगी तरह, स्तब्ध हुआ जहान।
अनुष्ठान नित ही हुए, मिला विश्व सम्मान॥
जगन्नाथपुर धाम ने, ध्वजा झुकाई मान।
जगत अश्रुपूरित सकल, करे संत सम्मान॥
सप्तऋषि आलोक में, सत्यम् का स्थान।
चमक रहे नक्षत्र बन, संत निरंजन जान॥

8. चौपाई – फर्ज शिष्य का खूब निभाया, चरण कमल में ध्यान लगाया।
गुरु सेवा ही सार बताया, मान पद्मभूषण का पाया॥
वर्ष शताब्दी मन रहा, गुरुवर सत्यानंद।
सजा पीठ संन्यास है, बिखरा है आनंद॥
रामायण का पाठ हो, बँटता गीता ज्ञान।
नित होती मंत्र साधना, यज्ञ, हवन और दान॥
विविध पंथ की साधना, आते संत अनेक।
गद्‌गद् करते नर मनन, जीवन बढ़े विवेक॥
नचिकेता से शिष्य हैं, सत्यम् के आधार।
हरि सदृश्य निरंजन, करते जग उद्धार॥
संत समागम हो रहा, होता है सत्संग।
रुद्राभिषेक आराधना, कलकल बहती गंग॥
उच्चारण हो ओम का, शांति मिले अपार।
तन-मन का उद्धार हो, करें भक्त आभार॥
सत्यम् का आशीर्वाद हैं, गुरु निरंजन आप।
हम सदा ही आपके, हर लेना संताप॥
सुखी रहें सब कामना, मंगल होगा जाग।
गुरुवर का सुमिरन सदा, खुलते नर के भाग॥

करो नाम संकीर्तन, घर का हो उद्धार।
हम विराट के अंश हैं, हृदय करो स्वीकार॥
रखना ध्यान समाज का, करो पड़ोसी प्यार।
सबके हित की सोचना, जीवन के दिन चार॥
रहना सदा प्रसन्न ही, मुख रखना मुस्कान।
दस प्रतिशत आय का, दे देना तुम दान॥
जय हो बोलो भक्त गण, मंत्र ओम उच्चार।
राम-राम रटते रहो, भवसागर से पार॥

9. चौपाई – जय जय सत्यम् नाम अधारा, बनकर पारस जग को तारा।
तीन लोक में ख्याति तुम्हारी, जग की हरना पीड़ा सारी॥

महिमा गुरु की नर अगम, कैसे करूँ बखान।
करते मार्ग प्रशस्त हैं, आप ज्ञान की खान॥
आप ज्ञान की खान, राह हर सत्य दिखाते।
अंधकार में ज्योत, सीख वह नेक बताते॥
कहती मधु यह बात, गान कर उनकी गरिमा।
नैया कर दो पार, ईश सम लगती महिमा॥
आकर गुरु के द्वार पर, उन्हें नवाते माथ।
भटक रहे संसार में, सर पर रखना हाथ॥
सर पर रखना हाथ, कौन तुम बिन अब मेरा।
बच्चा एक अनाथ, सहारा माँगे तेरा॥
मधु सुन लो यह बात, स्नेह गुरुवर का पाकर।
हुए आज हम धन्य, गुरु चरणों में आकर॥
संत निरंजन सूर्य सम, करते मार्ग प्रशस्त।
तेज रवि सा फैलता, कभी न होते अस्त॥
कभी न होते अस्त, सदा वे स्नेह निभाते।
ऊँच-नीच का भेद, सदा वे हमें सिखाते॥
करते काम महान, करें हैं दानव भंजन।
आत्म भाव में रहें, सदा ही संत निरंजन॥

बिहार की संतानों के नाम

साधकों, सेवकों, मौन पथिकों के लिए ...

मैं तुम्हारी गलियों में चला हूँ,
तुम्हारे बीच बैठा हूँ।
मैंने तुम्हारे चरणों की धूल देखी है
और आँखों की चमक भी।
मैंने तुम्हारे प्रश्न सुने हैं –
केवल अधरों से नहीं, सीधे दिलों से।

बिहार मुरझाया हुआ प्रदेश नहीं है,
यह गहन तपस्या में निरत भूमि है।
मिट्टी के भीतर छिपे बीज की तरह
यह निष्क्रिय प्रतीत होता है –
लेकिन भीतर एक प्रबल प्रकाश
जाग रहा है।

इसी भूमि में बुद्ध की अहिंसा जन्मी,
महावीर की विरक्ति,
और चाणक्य की नीति।
ये संस्कार तुम्हारी साँसों में जीवित हैं।

मैं तुमसे संसार का त्याग नहीं माँगता,
मैं संसार में जागने के लिए कहता हूँ।
अपने घर को आश्रम बनाओ।
अपने कर्म को साधना बनाओ।
अपनी वाणी को मंत्र बनाओ।

कन्दराओं में रहने वाले सन्तों
की संसार को आवश्यकता नहीं।
उसे चाहिए ऐसे लोग
जो बीच बाज़ार में भी
दिव्यता को जी सकें।
और वह क्षमता तुममें है।

योग को जानो,
लेकिन उससे ज्यादा,
योग को जीयो।
केवल आसन में नहीं, संतुलन में।
केवल साँसों में नहीं, सजगता में।
केवल जप में नहीं, करुणा में।

सदा याद रखना –
तुम साधारण नहीं हो।
तुम वह चेतना हो
जो स्वयं के प्रति सचेत हो रही है।

बिहार का उत्थान न राजनीति से होगा,
न विरोध से।
यह होगा अंतःकरण के रूपान्तरण से,
और तुम हो इसके कर्णधार।

मैं तुम्हारे साथ चला हूँ।
अब, तुम स्वयं के साथ चलो –
परिपूर्ण, उन्मुक्त और निर्भय होकर।

अपने भीतर बिहार की गंगा को बहने दो।
फिर देखना – यहीं से योग की सुरभि
सारी पृथ्वी में व्याप्त हो जाएगी।

चिर-आशीर्वाद सहित,

गंगा दर्शन, मुंगेर

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 8

शांतता और नियमितता के संस्कारों का अन्वेषण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 66, ISBN: 978-93-48677-54-9

गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में 18 से 26 जनवरी 2018 तक आयोजित अध्यात्म संस्कार साधना सत्र के दौरान स्वामी निरंजनानंद सरस्वती ने एक प्रेरक सत्संग शृंखला प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने संस्कारों की प्रकृति, गुणवत्ता और प्रयोजन को समझाते हुए जीवन में उनके प्रभाव और भूमिका को निरूपित किया। इस क्रम में उन्होंने शांतता और नियमितता के यम और नियम पर प्रकाश डाला।

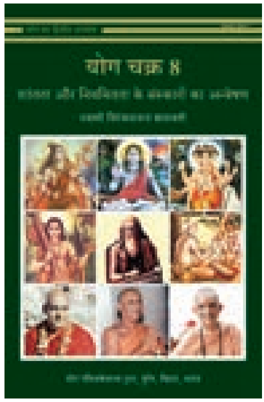

नया प्रकाशन

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

BIHAR YOGA

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025-26

योगपीठ कार्यक्रम

जनवरी 18–23	*बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस*
फरवरी 14	*बाल योग दिवस*
मई 6	*मुंगेर आगमन*
नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15 2025	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव*
फरवरी 1–अप्रैल 30	*संन्यास अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*
फरवरी 21–27	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 6–12	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
अप्रैल 4–10	*धारणा प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31 2025	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*
मार्च–अप्रैल	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)*
अप्रैल 1–30	*पारम्परिक योग प्रशिक्षण (अंग्रेजी)*
नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें